शुभ कामनायें

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-४

पत्रावली सं० ८-एम/७३

मार्च २६, १९७३

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी के नाम भेजे २२ मार्च, १९७३ के आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति, कलकत्ता द्वारा महावीर जयन्ती १५ अप्रेल, १९७३ को मनायी जा रही है। जयन्ती समारोह की सफलता हेतु राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

भवदीय,
रे० वे० राघवराव
राष्ट्रपति का अपर निजी सचिव

GOVERNOR OF MYSORE

राज भवन
बेंगलोर
२२ मार्च १९७३

प्रिय श्री कमल कुमारजी,

आपका ता० १७ मार्च का पत्र मुझे प्राप्त हुआ। ता० १५ अप्रेल को मैसूर राज्य के दो स्थानों पर इस अवसर पर सम्मिलित होने को मैं बहुत पहले स्वीकृति दे चुका हूँ, अतः इस अवसर पर मेरा वहाँ आ सकना सम्भव नही होगा, इसके लिये क्षमा चाहता हूँ। आप लोगो ने इस योग्य समझा उसके लिये मैं आपका बहुत आभारी हूँ।

शेष कुशल।

आपका
मोहनलाल सुखाडिया

ASSISTANT SECRETARY TO THE GOVERNOR
WEST BENGAL
Raj Bhavan,
Calcutta,

The 23rd March, 1973
D.O. No. 1571-G

Dear Sir,

Please refer to your letter dated the 22nd March, 1973, inviting the Governor to attend, as Guest-in-chief, the Bhagwan Mahavira Jayanti Celebrations to be held on the 15th April, 1973 at 7 p m. under the auspices of the Bhagwan Mahavira Jayanti Samaroha Samiti, Calcutta

I am desired to thank you for the kind invitation and to say that the Governor regrets very much his inability to accept the invitation to attend the function on that day due to other engagements.

The Governor, however, sends his good wishes for the success of the Mahavira Jayanti Celebrations to be held by your Samiti.

Yours faithfully
A K. Banerjee
Asstt. Secretary to the Governor,
West Bengal

CHIEF MINISTER

Bhopal
No. 1831 C..M.S.
Dated 3rd April 1973

Dear Shri Jain,

I have received your letter dated the 7th March, 1973 inviting me to be the Chief Guest of Bhagwan Mahavira Jayanti Celebrations, for which I thank you. I regret, it will not be possible for me to come to Calcutta due to prior engagements.

With good wishes,

Your sincerely,
P. C. Sethi

जीवन कुटीर
वर्धा
(महाराष्ट्र)
२६ मार्च, १९७३

प्रिय श्री कमलकुमार जैन,

आपका ता० १७ मार्च का पत्र मिला। धन्यवाद। आपने जैन कान्फ्रेन्स के उद्घाटन के लिए मुझे आमन्त्रित किया इसके लिए बहुत आभारी हूँ। किन्तु मुझे दुःख है कि मै अप्रैल में कलकत्ता न आ सकूँगा। क्षमा करें।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

प्रतिवेदन

भगवान् महावीर की २५७१ की जयन्ती के अवसर पर स्मारिका प्रकाशित करते हुये परम प्रसन्नता हो रही है। स्मारिका के लिये आये, प्रायः सभी लेख व कविताएँ प्रकाशित की गई है पर कुछ लेखो को स्थान की कमी तथा विलम्ब से आने के कारण प्रकाशित नही किया जा सका, जिसके लिये उन लेखक बन्धुओ से क्षमा चाहते है। लेख प्रायः यथावत् प्रकाशित किये गये हैं। कई लेखो को स्थानीय अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला व उर्दू पत्रों में छापने के लिये भी भेजा गया है और आशा है, कई पत्रो मे लेख प्रकाशित होंगे।

प्रत्येक वर्ष की तरह गत् वर्ष भी भगवान् महावीर की २५७० की जयन्ती बड़ी धूम-धाम से मनाई गई। सप्ताह व्यापी कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी वी सं० २४९७ तदनुसार ता० २७-३-७२ को जो श्री जैन विद्यालय में श्री विजयसिंह नाहर (भूतपूर्व पश्चिम बंगाल राज्य उप मुख्यमन्त्री) की अध्यक्षता में एक आम सभा की गई। प्रधान अतिथि श्री रामकृष्णजी सरावगी, राज्य मन्त्री पश्चिम बंगाल ने कहा था कि भगवान् महावीर के सिद्धान्त आज भी उतने ही महत्वपूर्ण है जितने कि २५०० साल पहले थे और अगर उनके उपदेशो व सिद्धान्तो को अपना लिया जाय तो सारे समाज, राष्ट्र व विश्व का भला हो जाय।

प्रधान वक्ता श्री सुमेरूचन्द दिवाकर "न्यायतीर्थ" ने कहा कि भगवान महावीर के अपरिग्रह व स्यादवाद के सिद्धान्त को अपनाया जावे तो विश्व मे शान्ति शीघ्र सम्भव है। डा० रामचन्द्र् अधिकारी ने बताया कि भगवान् महावीर एक वैज्ञानिक थे।

अध्यक्ष श्री विजयसिंह नाहर ने भगवान् महावीर को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये कहा कि भगवान् महावीर की २५०० वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में जहाँ-जहाँ भगवान् का पदार्पण हुआ वहाँ रचनात्मक कार्य कर जनता को भगवान् के उपदेशो का स्मरण करवाना चाहिये।

भगवान महावीर का २५०० वाँ निर्वाणोत्सव

भगवान् महावीर के २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हेतु श्री जैन सभा के तत्वावधान में कई बार सभा का आयोजन किया गया पर अभीतक कोई सक्रिय कार्यक्रम नही हुआ है। प्रयास जारी है और शीघ्र ही प्रान्तीय स्तर पर एक कान्फ्रेंस बुलाने का प्रोग्राम है।

राष्ट्रीय समिति के गठन को प्रायः एक वर्ष हो चुका है पर उसके द्वारा अभी तक कोई रचनात्मक कार्य नही हुआ है। इस सन्दर्भ में पश्चिम बंगाल में राज्य स्तर पर समिति का गठन भी अभीतक नही हुआ है।

भगवान् महावीर निर्वाणोत्सव के लिये कई सुझाव हैं जैसे यहाँ पर जैन कालेज, छात्रावास व अस्पताल बनाये जाँय। कलकत्ता व वर्दवान विश्वविद्यालय के जैन दर्शन की चेयर की स्थापना हो। मैदान में महावीर का एक स्मारक चिह्न हो। जैन कला मूर्तियो का चित्र, प्राचीन जैन चित्र, शिल्प, हस्तलिखित जैन ग्रन्थो की प्रदर्शनी

की जाय। जैनेतर लोगो के लिये छोटी-छोटी पुस्तके सुलभ भाषा मे छपवाकर वितरित की जाय। भगवान् महावीर के जीवन पर चित्रो व लेखो का संकलन कर उसे प्रकाशित किया जाय। अगले वर्ष भगवान् महावीर का २५०० वाँ निर्वाणोत्सव मनाना है, समय कम है। अतः समस्त जैन समाज को संगठित होकर इस कार्य को शीघ्र आरम्भ कर देना चाहिये।

सामूहिक क्षमपना सम्मेलन

रविवार ता० २४ दिसम्बर १९७२ को प्रातः कलकत्ते के मैदान (शहीद मिनार) में श्री जैन सभा के तत्वावधान मे—श्री विजयसिह नाहर की अध्यक्षता में सामूहिक क्षमापना सम्मेलन का विराट आयोजन किया गया। इसमें दस हजार से अधिक व्यक्ति उपस्थित थे। विभिन्न जैन सम्प्रदाय के कई साधु-साध्वी भी इस सम्मेलन में उपस्थित थे। सम्मेलन के एक दृश्य का चित्र इस स्मारिका में प्रकाशित किया जा रहा है।

विविध

स्मारिका के लिये भेजने वाले लेखको व विज्ञापन दाताओ के हम आभारी है। श्री जैन भवन के सहयोग से स्मारिकामें पश्चिम बगाल, उडीसा व तामिलनाडु के प्राचीन चित्र प्रकाशित किये गये हैं। स्मारिका भगवान् महावीर के सिद्धान्तो के प्रचार हेतु प्रकाशित की जा रही है और आशा है हमारा यह प्रयास सफल होगा। स्थानीय पत्रो के भी हम आभारी है जिसमें लेख छप रहे हैं तथा जो समय-समय पर इस सम्बन्ध में सूचना प्रसारित करते रहते हैं।

अन्त में समिति के पदाधिकारियो व सदस्यो का भी मै आभारी हूँ जिनके सहयोग से महावीर जयन्ती समारोह सम्बन्धित कार्य व स्मारिका का प्रकाशन, सम्भव हो सके हैं।

कमलकुमार जैन
संयोजक
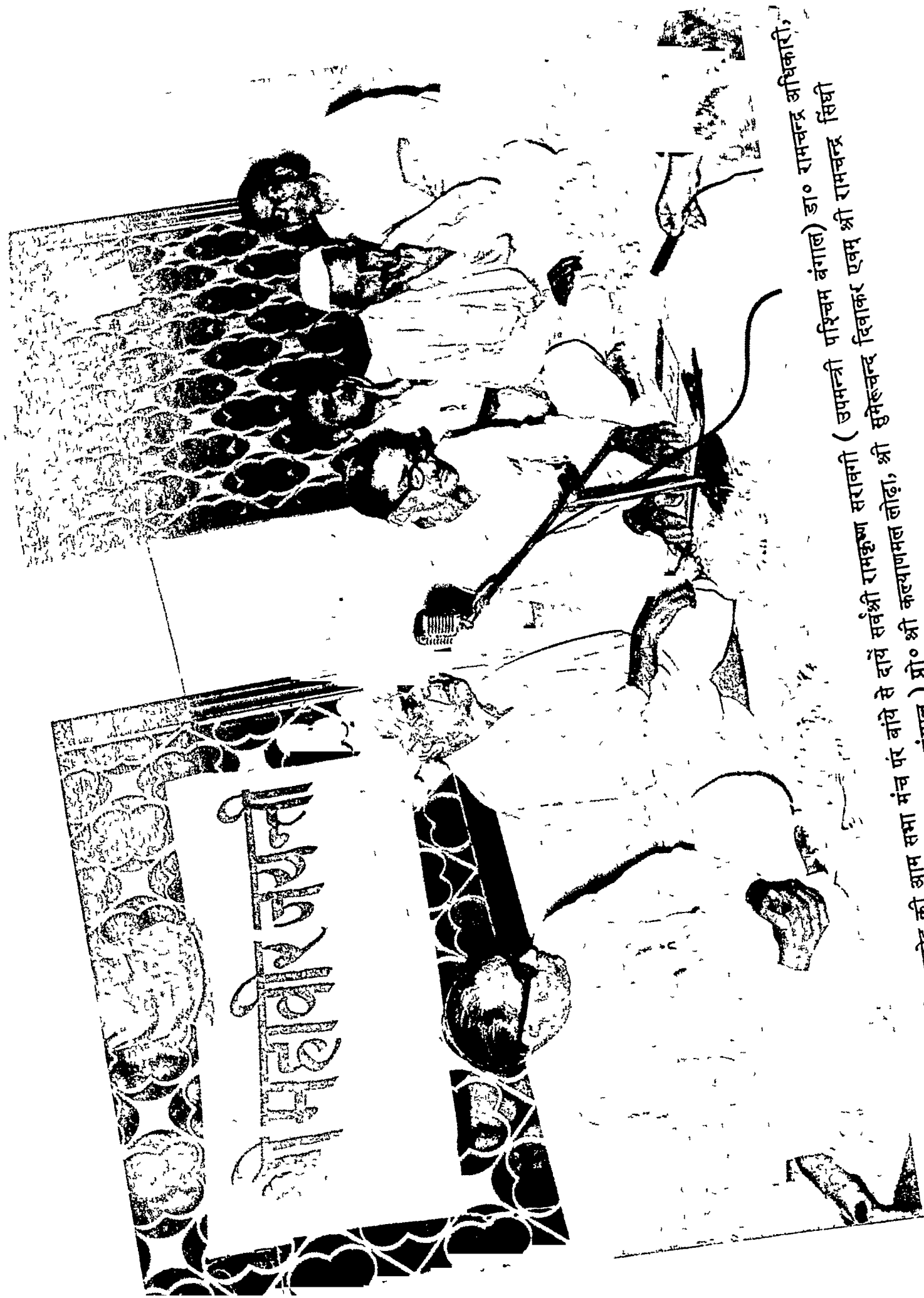
भगवान महावीर जयन्ती समारोह की आम सभा मंच पर बांये से दायें सर्वश्री रामकृष्ण सरावगी (उपमन्त्री पश्चिम बंगाल) डा० रामचन्द्र अधिकारी, श्रीबिजय सिंह नाहर (भूतपूर्व उपमुख्य मन्त्री प० बंगाल) प्रो० श्री कल्याणमल लोढ़ा, श्री सुमेरूचन्द दिवाकर एवम् श्री रामचन्द्र सिंघी
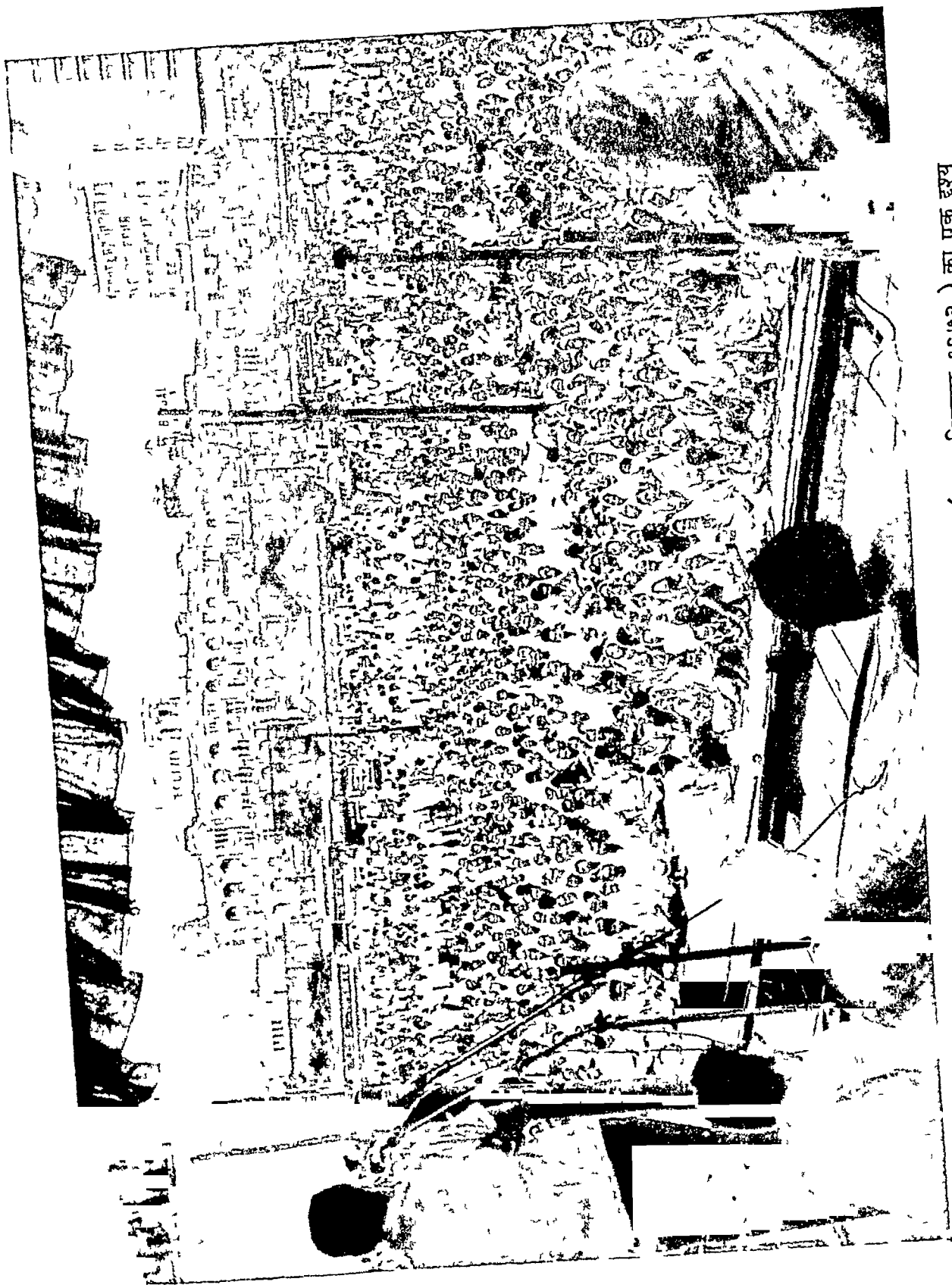
शहीद मिनार के मैदान में आयोजित सामूहिक क्षमापना सम्मेलन (२४, सितम्बर १९७२) का एक दृश्य

भगवान् महावीर, विश्व-चिन्तन और वैज्ञानिक सन्दर्भ

—डा० गोकुलचन्द्र जैन

भगवान् महावीर और उनके चिन्तन का अध्ययन अब तक धार्मिक परिवेश में हुआ है। मेरी समझ से अध्ययन का यह एक पक्ष है। भगवान् महावीर और उनके चिन्तन को पूरी तरह समझने के लिए उनका अध्ययन विश्व चिन्तन तथा वैज्ञानिक सन्दर्भों मे किया जाना आवश्यक है।

महावीर का जन्म ईसा पूर्व छठी शताब्दी मे हुआ था। यह युग सम्पूर्ण विश्व के लिए विचार-क्रान्ति का युग था। भारत मे भगवान् महावीर, महात्मा बुद्ध तथा कुछ अन्य महापुरुषो ने ईश्वरवाद की अबूझ पहेली तथा धर्म मे केन्द्रित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन के विरुद्ध आवाज उठायी थी। चीन मे लाओत्से और कन्फ्यूशियस ने विचार क्षेत्र मे क्रान्ति पैदा कर दी थी। ग्रीस में सुकरात, पाइथागोरस और प्लेटो ने क्रान्ति की आवाज बुलन्द कर रखी थी। ईरान या परसिया मे जरथुस्त्र चिन्तन को नयी दिशा दे रहे थे। अन्य देशों मे भी चिन्तन की धारा प्रकृति के अध्ययन से हटकर व्यक्ति और सामाजिक जीवन की समस्याओ को अध्ययन की ओर मुड गयी थी।

इन महापुरुषों के चिन्तन का अध्ययन विश्व-दर्शन की आधार-भूमि के रूप मे किया जाता है। वे विश्व के महान् दार्शनिक माने जाते है। महावीर का अध्ययन अभी तक इस प्रकार के व्यापक सन्दर्भ मे नही हुआ। मेरी स्पष्ट मान्यता है कि महावीर ने जो चिन्तन दिया उसका सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन से गहरा सम्बन्ध है। यदि महावीर ने मात्र धर्म को ही नया रूप दिया होता, तो महावीर को जितनी बडी सफलता अपने जीवन मे अपने मिशन या तीर्थ को व्यापक रूप देने में मिली, वह कदापि सम्भव नही थी।

इससे भी महत्त्वपूर्ण है महावीर के बाद पच्चीस सौ वर्षों से चली आ रही उनकी जीवन्त परम्परा। यदि सामाजिक जीवन को महावीर का चिन्तन समग्र रूप से व्याप्त न करता, तो इतनी लम्बी अवधि तक उनकी परम्परा का चलना सम्भव नही था। महावीर के समय मे बुद्ध के अतिरिक्त और भी पॉच महापुरुष भारत में क्रान्ति का बीडा उठाये हुए थे। उनको भी गणनायक, संघनायक, तीर्थङ्कर, बहुजनसेवी, यशस्वी आदि कहा गया है। किन्तु इनमे से किसी के भी चिन्तन की जीवन्त परम्परा आज मौजूद नही है। अधिकांश तो अपने शास्ता के जीवनकाल मे ही मृतप्राय हो गये थे। जो आगे चले, वे भी थोडे समय बाद समाप्त हो गये।

महात्मा बुद्ध को अपने काल में जितनी सफलता मिली उससे भी अधिक व्यापक प्रसार बाद के युगो में मिला। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए संसार व्यापी प्रयत्न किये। इस सबके बावजूद जिस देश में बुद्ध जन्मे और जहाँ पर उन्होने अपने मिशन की स्थापना की, वही पर वह नाम शेष हो गया। इसका बडा कारण मुझे यही प्रतीत होता है कि बुद्ध के चिन्तन ने सामाजिक जीवन को समग्र रूप से व्याप्त नही किया था।

इन बातो को ध्यान में रखकर महावीर के चिन्तन का अध्ययन करने के लिए कुछ आधार सूत्र इस प्रकार हो सकते हैं—

Be not angry when smitten, nor fly into a rage when abused

—वर्गविहीन समाज रचना

महावीर के युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्गों में समाज बॅटा था। समाज रचना के ये आधार विन्दु थे। जन्म के आधार पर ऊॅच-नीच का वर्ग-भेद तीव्र था। महावीर ने कहा—वह समाज कैसा, जिसमें आदमी आदमी के निकट न आ सके। वह समाज रचना कैसी, जिसमें जाति और कुल को ऊॅच और नीच होने का आधार वनाया जाय? मानव मात्र की जाति एक है—मानव जाति, पशुओं की तरह उसमें गौ और अश्व का भेद नही किया जा सकता। कार्य के आधार पर समाज व्यवस्था होनी चाहिए। वर्ग-विहीन समाज रचना।

२—व्यक्ति की प्रतिष्ठा

व्यक्ति समाज की सवसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। महावीर के युग मे ईश्वरवादी चिन्तन के कारण व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा था। ईश्वर की कृपा या अकृपा पर उसका जीवन निर्भर हो गया था। महावीर ने कहा—इस प्रकार के किसी ईश्वर को मानने की आवश्यकता नही, जो विषमतापूर्ण विश्व को वनाये और सफाई के लिए कहे कि यह तो अपने-अपने कर्मों के आधार पर बनाया गया है।

महावीर ने कहा—आत्मा स्वयं परमात्मा है। वह अपना ईश्वर स्वयं है। अपने ईश्वरत्व को पहचानो और परमात्मस्वरूप को पाने का प्रयत्न करो। अपने किये का फल स्वयं भोगना होगा। इसलिए सत्कर्म करो।

महावीर के इस चिन्तन ने व्यक्ति को जो आत्मवोध कराया, वह सामाजिक जीवन का मूल आधार वना।

३—यज्ञों का विरोध

महावीर के युग मे यज्ञ धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन के केन्द्र विन्दु थे। यज्ञ मूलक संस्कृति ने समाज के आर्थिक जीवन को पूर्ण रूप से अस्तव्यस्त कर दिया था। इसलिए महावीर ने कहा कि ऐसे यज्ञो से क्या लाभ जो समाज को उजाडें। जीवन के लिए उपयोगी सामग्री को अग्नि मे जलाने में धर्म नही हो सकता।

महावीर के इस यज्ञ विरोध से समाज के आर्थिक जीवन को वड़ा बल मिला।

४—विचार मूलक आचार

समाज व्यवस्था के लिए ही महावीर ने अनेकान्त का चिन्तन और अणुव्रत की आचार संहिता दी। उनका आचार-विचार मूलक था। वह सबके लिए समान था। उसमें वर्गभेद नही था।

५—राजनीतिक जीवन

महावीर ने कहा—जो अपना शासन नही कर सकता, वह दूसरो का प्रशासन क्या करेगा। युद्ध में हजारो योद्धाओ को जीतने की अपेक्षा अपने-आप को जीतना महत्त्वपूर्ण है। उन्होने कहा—जिस प्रकार फूलो को कष्ट पहुँचाये विना भौरा फूलो से रस ले लेता है, उसी प्रकार अपना भागदेय ग्रहण करना चाहिए।

महावीर स्वयं राजपुत्र थे। उस युग के प्रसिद्ध और प्रभावक राज्य परिवारो से उनका घनिष्ट सम्वन्ध था। महाराज चेटक तथा श्रेणिक विम्बसार उनके निकट सम्वन्धी थे। इस सवके कारण भी राजनीतिक जीवन पर महावीर के चिन्तन का विशेष प्रभाव पडा।

महावीर के चिन्तन का इन सन्दर्भों मे अध्ययन करने पर महावीर एक वहुत वड़े समाजशास्त्री के रूप में

हमारे सामने आते है उनका चिन्तन एक ऐसा समाज शास्त्रीय दर्शन प्रस्तुत करता है, जो देश और काल की सीमाओं से परे हैं। मानव मात्र के लिए है। सारे विश्व के लिये है।

भगवान् महावीर के चिन्तन का अध्ययन अब इस दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। विश्व के दार्शनिकों के चिन्तन के साथ महावीर के चिन्तन का अध्ययन करके विश्व कल्याण के लिए महावीर के चिन्तन का अमृत प्रस्तुत करना चाहिए। दूसरी बात वैज्ञानिक सन्दर्भों की है। यह और अधिक महत्वपूर्ण है इस विषय मे दो बाते ध्यान में रखनी होगी। एक यह कि महावीर की पच्चीस सौ वर्षों में व्याप्त परम्परा के साहित्य मे जो वैज्ञानिक तथ्य उपलब्ध होते है, उनका अध्ययन किया जाये। दूसरे यह कि सैद्धान्तिक मान्यताओं का प्रायोगिक अध्ययन किया जाये। उदाहरण के लिए कुछ विषय ये हैं—

१ : लोक की रचना के विषय मे वातवलय का सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है। तीन वातवलय इस विश्व के आधार बताये गये है। अन्तरिक्ष की खोज से वातवलयों की मान्यता थोडी-थोडी समझ मे आ जाती है। इसका पूरा अध्ययन किया जाये तो अन्तरिक्ष यात्रा के नये आयाम खुल सकते हैं।

लोक के स्वरूप की जो मूलभूत मान्यता थी, संभवतया बाद के व्याख्या ग्रंथो मे वह डूब गयी है। इस कारण हम उसके अध्ययन सूत्र नही पकड पा रहे है और हमें लगता है, जैसे ये मान्यताएं काल्पनिक रही हो। जब तक इनका सम्यक् परीक्षण न कर लिया, तब तक इनको झुठलाने की बात मेरी समझ में नही आती।

२ : जीव के विकाश की प्रक्रिया का प्रायोगिक अध्ययन ससार की अनेक गुत्थियों को सुलझा सकता है। डार्विन ने विकासवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। हमारे यहाँ निगोद से लेकर मोक्ष तक की विकास प्रक्रिया का विधिवत् वर्णन किया है।

इसका अध्ययन डार्विन के सिद्धान्त तथा अन्य नवीन खोजो के साथ तुलनात्मक दृष्टि से अपेक्षित है।

३ : कर्मबन्ध की रासायनिक प्रक्रिया का अध्ययन एक महत्वपूर्ण विषय है। स्निग्ध और रूक्ष कर्म पुञ्ज पद्‌गलो का बन्ध किस प्रकार होता है? किन परमाणुओं का आस्रव होने के बाद भी बन्ध नही होता? बंधे हुए कर्म परमाणुओं की निर्जरा किस प्रकार होती है, इत्यादि का अनुसन्धान होने पर कई नये तथ्य उद्‌घाटित होंगे।

४ : कर्म सिद्धान्त में जो गणितीय सामग्री है, उसमें आधुनिक गणित सिद्धान्त की सबसे जटिल 'सेट्थ्योरी' के समाधान की सामग्री उपलब्ध है। इसका अध्ययन प्रायोगिक रूप में आवश्यक है।

इसी प्रकार के अन्य अनेक विषय है, जिनका अध्ययन प्रायोगिक स्तर पर होना चाहिए।

उपर्युक्त दोनों प्रकार से अर्थात् समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से तथा प्रायोगिक रूप में महावीर के चिन्तन का अध्ययन परम्परागत ढंग की पाठशालाओं, विद्यालयों या साहित्यिक अनुसन्धान के लिए स्थापित संस्थानो मे संभव नही है। मानविकी तथा विज्ञान के निष्णात और निष्ठावान् अध्येता तथा सिद्धान्तो के सच्चे ज्ञाता जब सम्मिलित रूप से इस दिशा में प्रवृत्त होंगे तभी इस प्रकार के अध्ययन सम्भव है।

मै इस बात को वर्षों से कहता आ रहा हूँ। आचार्य तुलसी जी ने जब जैन विश्व भारती की स्थापना की बात प्रारम्भ की थी तब उनके समक्ष भी मैने यह बात रखी थी। बम्बई में महावीर निर्वाण शताब्दी के लिए

राष्ट्रीय समिति ने सिद्धान्त रूप में काउन्सिल बनाने की बात स्वीकार की है। यदि यह काउन्सिल अन्य काउन्सिलों की तरह केन्द्रीय अनुसन्धान संस्थान की स्थापना करती है और उसमें उपर्युक्त प्रकार के अध्ययन अनुसन्धान की व्यवस्था होती है, तो एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति हो जायेगी, किन्तु यदि यह काउन्सिल विश्वविद्यालयों में चेयर खुलवाने वाली अनुदान संस्था के रूप में ही काम करती है, तो इससे अधिक लाभ नहीं होगा।

जैन विद्याओं को एक व्यापक सन्दर्भ देने के लिए, इसे जैनिज्म की अपेक्षा जैनोलाजी शब्द बहुत सोच-विचार के बाद दिया गया है। इसमें मानविकी तथा विज्ञान (ह्यूमनिटीज एण्ड साइन्सेज) से सम्बन्धित सभी विषयों को अन्तर्भुक्त माना गया है। जैनोलाजिकल रिसर्च सोसाइटी उपर्युक्त प्रकार के अध्ययन-अनुसन्धान की भूमिका तैयार कर रही है। कुछ विषयों पर कार्य आरम्भ भी हुआ है, किन्तु जब तक ऐसे संस्थान की स्थापना नहीं हो जाती, जिसमें उपर्युक्त प्रकार के अध्ययन और अनुसन्धान कार्य सम्भव हों, तब तक कार्यों को आगे बढ़ाने में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ है। हम इस बात के लिए पूर्ण प्रयत्नशील हैं कि इस प्रकार के संस्थान की स्थापना शीघ्र हो। नयी और पुरानी पीढ़ी तथा भगवान महावीर की सभी परम्पराओं के श्रद्धेय साधुओं और श्रावकों को इस दिशा में आगे बढ़कर बीडा उठाना चाहिए।

With

best Compliments

from

★

Surajmal Bengani Charitable Trust

15, India Exchange Place,

Calcutta-1

महावीर का धर्म—विश्व शान्ति का साधक

(डा० ज्योति प्रसाद जैन, लखनऊ)

यह एक तथ्य है कि आज विश्व अशान्त है, प्रत्येक व्यक्ति अशान्त है। अनेक प्रबुद्ध विचारक एवं राजनीतिक शान्ति स्थापना के लिये सतत प्रयत्नशील है, किन्तु शान्ति की सम्भावना उत्तरोतः दूर होती प्रतीत होती है। स्वर्गीय राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी आधुनिक युगमें शान्तिके अग्रदूत थे। उनका समस्त जीवन शान्ति के लिये प्रयत्न करते ही बीता और उसीके लिये उनका बलिदान भी हुआ। उनके जीवन मे दो-दो विश्वयुद्ध हुये। उक्त युद्धों मे भी उनकी भूमिका एक शान्तिदूत की ही रही। कुछ विद्वानो का कहना है कि वह ईसाई धर्म से प्रभावित थे, कोई कहता है कि वह रूसी मनिषी टालस्टाय से अथवा अंग्रेज चिन्तक रस्किन के विचारो से प्रभावित थे। भगवद्गीता के भी वह परम भक्त थे। यों उनके प्रारम्भिक जीवन में जिस विचारधारा ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया था वह जैन थी। जैन सन्त श्रीमद् राजचन्द्र भाई को गाँधीजी अपना गुरु मानते थे और उनके सम्पर्क से ही अध्यात्मिकता, अहिसा एव सत्य में बापू की आस्था दृढ़ हुई थी। धर्म की दृष्टि से सम्प्रदाय विशेष का ही नाम लिया जाय तो गाँधीजी परम वैष्णव हिन्दू थे, किन्तु सभी धर्मों के प्रति उनका समभाव था। सभी धर्मों को आदर की दृष्टि से देखते थे और स्थायी शान्ति के लिये इस सर्वधर्मसमभाव को वह आवश्यक भी समझते थे।

इस प्रसङ्ग में यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नही है कि जैनधर्म सर्वाधिक शान्तिपूर्ण धर्म परम्परा है। प्राचीन भारत में एक के बाद एक, चौबीस श्रमण तीर्थङ्कर हो गये हैं। इनमें एक दूसरे के मध्य पर्याप्त अन्तराल रहे है। आदिनाथ ऋषभदेव इस परम्परा के प्रथम तीर्थङ्कर थे और वर्तमान महावीर अन्तिम। इन्ही तीर्थङ्कर महावीर का निर्वाण ईसा के जन्म से ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। अगले वर्ष, देश-विदेश मे उनका २५००वाँ निर्वाण महोत्सव मनाया जा रहा है। इन श्रमण तीर्थङ्करो द्वारा पुरस्कृत, प्रतिपादित, स्वयं आचरित तथा जन-जन में पदातिक विहार करके प्रचारित धर्म ही जैन धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। महावीर आदि तीर्थङ्करो ने इस अहिंसा प्रधान निग्रन्थ धर्म का प्रचार—'सर्व सत्वानां हिताय, सर्व सत्वानां सुखाय' किया था। किसी एक जाति, वर्ण, वर्ग या समुदाय के लिये नही, वरन् मनुष्य मात्र के—प्राणीमात्र के हितसुख्य के लिये समभाव से किया था।

इस धर्म के मूलाधार तीन कहे जा सकते हैं—**आत्मोपम्य, अनेकान्त** और **अहिंसा,** और तीनो का ही लक्ष्य शान्ति प्रदान करना है, सर्वत्र शान्ति की स्थापना करना है—व्यक्ति को, परिवार को, समाज को, देश और राष्ट्र को, सम्पूर्ण विश्व को शान्ति प्राप्त हो, कही भी किसी प्रकार की अशान्ति न रहे।

आत्मोपम्य का सिद्धान्त बताता है कि संसार में जितने भी देहधारी प्राणी है, छोटे-से-छोटे जीव-जन्तु पशु-पक्षियो से लेकर मनुष्य पर्यन्त, सभी आत्म तत्व विशिष्ट है। आत्माओ की अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, और ये समस्त आत्माये अपने स्वभाव, क्षमताओ गुण धर्मो से समान हैं। दुःख-सुख की जैसी अनुभूति हमें होती है वैसी ही अन्य सब प्राणियो को होती है। प्राणी-प्राणी में, व्यक्ति, व्यक्ति मे कोई भेद नही है, और न ही होना चाहिये।

With

best Compliments

from :

❖

Jiwanmal Surajmal

15, India Exchange Place,

Calcutta-1.

Phone · 22-2606

अतएव 'सवो सव्व भूस्सु' सबको अपने समान समझो, उनके साथ वैसा ही वर्ताव करो जैसा कि तुम चाहते हो वे तुम्हारे साथ करे। उन सबमें समान रूप से देवत्व या परमात्मत्व निहित है। धर्माचरण द्वारा अपना कल्याण करने का सबको समान अधिकार है। **आत्मोपम्य का यह सिद्धान्त विश्वमैत्री और विश्वबन्धुत्व का प्रतिपादक तथा सार्वभौमिक शान्ति का विधायक है।**

अनेकान्त का सिद्धान्त, जो वस्तु तत्व विषयक वैज्ञानिक अनुभव पर आधारित है, व्यक्ति को उदार एवं सम्यक दृष्टि प्रदान करता है। प्रत्येक वस्तु में अनेक गुण धर्म होते है, उसके अनेक पहलू होते है। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से उसका वर्णन करते हैं। सत्य की व्यक्ति या धर्म की बपौती नही है। सब की बात सहिष्णुता पूर्वक सुनो और जिस दृष्टिकोण से वह कही गई है उसे समझने का प्रयत्न करो। हमारे बडे-से-बड़े विरोधी की बात भी किसी न किसी एक दृष्टिकोण से सही हो सकती है। उदार समन्वय बुद्धि से उस बात को सुनने और उस पर विचार करने की आवश्यकता है। ऐसी दृष्टि प्राप्त होने पर काराग्रह, हठधर्मी पक्षपात आदि के लिये गुन्जायश नही रहती। समस्त पारस्परिक विवाद एवं झगडे समाप्त करने का यह अमोघ उपाय है। अनेकान्त विचारधारा वाला व्यक्ति जो कथन करता है वह स्याद्‌वाद पद्धति से करता है—"ही" के स्थान में "भी" का प्रयोग करता है, अपनी बात ही सम्पूर्ण सत्य है और अन्य सब का मत सर्वथा असत्य है, ऐसा एकान्त दावा वह नही करता। इस प्रकार की सहिष्णुतापूर्ण उदार समन्वय बुद्धि पारस्परिक शान्ति की विधायक है। इसका प्रयोग दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्र में ही नही, सामाजिक, राजनैतिक, आदि लौकिक जीवन के भी प्रत्येक क्षेत्र मे सफलता पूर्वक किया जा सकता है और उसके द्वारा शान्ति का सम्पादन होगा ही।

अहिंसा को तो भ० महावीर आदि निर्ग्रन्थ तीर्थकारो ने 'परमोधम्म'-परमधर्म कहा, उसे साक्षात परमब्रह्म की पदवी प्रदान कर दी (अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमम्) धर्म का लक्षण ही अहिंसा और जीव-रक्षा बताया। जैन तीर्थकारो ने कहा कि धर्म जो स्वयं में सर्वोत्कृष्ट मंगल है वह अहिंसा रूप ही है। जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म नही—धर्म हिंसा रहित ही हो सकता है। उनका कहना था कि संसार मे जितने प्राणी है सभी को सुख साता प्रिय है, दुख को सभी अपने प्रतिकूल समझते हैं, वद्ध-बन्धनादि सभी को अप्रिय है, जीवन सभी को प्रिय है, सभी जीवित बने रहना चाहते हैं, अतएव किसी भी प्राणी की मन-वचन काय तथा कृत-कादित-अनुमोदन द्वारा किसी प्रकार भी हिंसा न करो, उसे मानसिक व शारीरिक कष्ट और पीडा न पहुँचाओ। इस प्रकार हिंसा न करना ही अहिंसा है। जीवरक्षा, दया, करुणा, लोक सेवा, विश्वमैत्री आदि के रूपो में अहिंसक प्रवृत्ति चरितार्थ होती है, और परिणाम उसका शान्ति है। युद्धो से युद्धो का अन्त नही होता। हिंसा के द्वारा हिंसा समाप्त नही हो सकती। हिंसा और युद्धो की समाप्ति अहिसा द्वारा ही सम्भव है। अहिसा की ही पर्याय सत्य, अस्तेय, शील एवं अपरिग्रह है। स्थूलरूप में भी इन व्रतो का पालन करने वाले, उन्हे अपने जीवन में उतारने वाला व्यक्ति अपनी और दूसरों की सुख शान्ति का विधायक होता है। संसार में जितने झगडे टंटे, कलह विवाद युद्धादि अशान्ति के कारण हैं उन सबकी जड ईर्ष्या-द्वेष, मद-मत्सर्य, बैर-विरोध, धन सम्पत्ति की लोलुपता, पर प्रभुता या सत्ता की लोलुपता अथवा विषय लोलुपता आदि ही होते हैं। किन्तु अहिंसा-सत्य-औचर्य-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह की जितने अंशों में भी व्यक्ति के, अतः समुदाय या समाज के, जीवन में प्रतिष्ठा होती है, अशान्ति के उपरोक्त कारणो का निराकरण भी स्वतः होता जाता है।

नित्य प्रति त्रैकालिक सामायिक के समय एक जैन यह भावना करता है कि—'प्राणी मात्र से मेरी मैत्री है, सम्पूर्ण लोक मेरा मित्र है, मेरा किसी से वैर नहीं है, सब प्राणियों में परस्पर अवैर हो, वैर कहीं नहीं। मै किसी के दुःख की चाह न करूँ, कोई भी किसी का दुख न चाहे, सभी प्राणी सुखी रहे।

और अपने इष्ट देव की उपासना का समापन भी वह इस प्रार्थना से करता है कि-हे भगवान जिनेन्द्र देव ? देश में, राष्ट्र में, नगर में, राज्य में, सर्वत्र शान्ति रहे, समस्त जनता का सुख क्षेम हो, शासक शक्तिशाली एवं न्यायानुकूल आचरण करने वाले ईमानदार जन सेवक हों, वर्षा उचित समय पर पर्याप्त हो, समस्त प्रकार की व्याधियों का नाश हो, दुर्भिक्ष, चोरी, डाका आदि विविध अपराध क्षणमात्र के लिए भी मनुष्यों के जीवन का स्पर्श न कर पावें ।

अस्तु, उपरोक्त जैन दृष्टि को अपनाने तथा जैनाचार को जीवन का अंग बना लेने से विश्व में शान्ति अवश्यमेव स्थापित हो सकती है, और वह सच्ची शान्ति होगी ।

ॐ शान्ति । शान्ति ।। शान्ति ।।।

श्रमण भगवान महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर
हमारी हार्दिक शुभ कामनाएं :—

जुगराज तेजराज

२, पोर्चूगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता-१

भगवान महावीर—उनका जीवन और सन्देश

लेखक—कैलाश जिन्दल, एम. ए. एल. एल. बी. आई. आर. एस. ऐडवोकेट

भगवान महावीर का जन्म ईसा से ५०६ वर्ष पूर्व हुआ था। उसके पिता वैशाली गणतन्त्र राज्य की क्षत्रीय जाति के नाम वंश के प्रमुख थे। पटना से २७ मील उत्तर आज कल वेसढ़ गाँव है। वही पहले वैशाली गणराज्य था। वर्धमान स्वामी-जिन्हे सन्मति, वीर, और महावीर भी कहते है—३० वर्ष की अवस्था मे अपने कुटुम्बी जन से विदा लेकर, जंगल मे एकान्त-वास के लिये चले गये। बारह वर्ष ध्यान लगाने के उपरान्त उन्हें ससार के दुःखो का कारण पता लगा और उनसे मुक्ति पाने का द्वारा भी। बारह वर्ष की तपस्या और ध्यान से जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसका महावीर स्वामी ने तीस वर्ष तक प्रचार किया। और फिर बिहार में पावापुरी स्थान से निर्वाण-गति को प्राप्त हुये।

केवली वर्द्धमान के मुख से जो वाणी मुखरित होती थी-उसका मुर्ख और पण्डित, पशु और पक्षी सभी अपनी अपनी भाषा मे समझ लेते थे। वाणी का सन्देश था कि आत्मा-अहम्-अनादि और अनन्त है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है। आत्मा के बिना ज्ञान नही, और ज्ञान के बिना आत्मा नही। संसारी जीव केवल आत्मा नही है। संसार में दो ही वस्तु है-जीव और अजीव। जीव का अजीव के बिना अस्तित्व ही नहीं, किन्तु अजीव का जीव के बिना अस्तित्व है। जड और चेतन के सम्मिश्रण को ही "जीवात्मा" कहते है। आत्मा स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ से थोडे समय के लिये या अधिक समय के लिये, भारी तौर पर या हल्की तौर पर, निरन्तर बँधी रहती है, घिरी रहती है, ये ही बन्धन समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति है—मानवी और अमानवी।

"कर्म शब्द से सभी परिचित है। भगवत् गीता में इसका विवरण है।" जैसा बोवोगे, वैसा काटोगे प्रचलित जनश्रुति है। परन्तु जैन दर्शन मे "कर्म" शब्द का दूसरा ही विशेष अर्थ है। "कर्म" जैन धर्म के अनुसार सूक्ष्म परमाणु को कहते है, जो इन्द्रियों के परे है, वैज्ञानिक यन्त्रो को अप्राप्य है। यह परमाणु सारी सृष्टि मे प्रचुर मात्रा में फैले है। जीवात्मा की इच्छाओं और वासनाओं से प्रचोदित परमाणु ही "कर्म" का रूप धारण करता है।

जीव जड पदार्थ से सर्वदा और सर्वथा प्रभावित होता रहता है। लिखित शब्द, बनाई हुई तस्वीर, ढली हुई मूर्ति, इमारत और खण्डर, मेज, कुर्सी—सभी पदार्थों से भावो का उद्रेक होता है, भले ही वह उद्रेक हानिकर हो श्रेयस्कर, शरीर ओर मन को शान्ति देनेवाला हो, या विचलित करने वाला। ये अदृष्ट अगोचर "कर्म" का महान प्रभाव है। आत्मा कर्म को भिन्न रूप और स्वरूप में भिन्न तादाद और घनत्व में, भिन्न समय के लिये अपनी ओर आकृष्ट करती है और अपने में मिला लेती है। मन-वचन-काय की हर क्रिया की प्रतिक्रिया "कर्म-बन्धन" है। कर्मों का आना अथवा कर्मों द्वारा आत्मा का बँध जाना "बँध" कर्मो का रूकना "संवर" कर्मों से छुटकारा "निर्जरा" इन चार अवस्थाओं का निरूपण और विवेचन जैन आचार्यों ने सहुत ही सूक्ष्मता से और गणित के आधार पर किया है।

शरीर धारी आत्मा मे वह शक्ति है कि वह कर्म-बन्धन से मुक्त हो सकती है और अपने स्वच्छ, निर्मल और केवल ज्ञान स्वरूप को प्राप्त हो सकती है। मुक्ति की गति को प्राप्त होने के लिये कई अवस्थाएं है। हर अवस्था भली प्रकार निर्धारित है। आत्मिक उन्नति मिथ्यात्व से सम्यग्दर्शन की ओर होती है, अज्ञान से ज्ञान की ओर, नियम-पालन से पूर्ण नियन्त्रण की ओर, वासनाओं और इच्छाओं के त्याग से मन-वचन-काय की स्पन्दन सहित शान्ति की ओर। यह प्रगति का मार्ग सबके लिये एक सा खुला है। मूल सिद्धान्त है **"जीओ और जीने दो**—और ऐसे जीओ की तुम्हारे जीने से औरो को कम से कम हानि हो।" इसी सिद्धान्त को मोटी तौर से अहिसावाद कहते है।

अहिसा का पूर्णतया पालन तो पहुँचे हुये साधु ही कर सकते है-वह साधु जिन्होने "अहम् का आत्मा का असली स्वरूप जान लिया है, जो अपने ध्यान में इतने मग्न है कि उनकी काया को कोई कुछ भी करे या उसके विषय मे कुछ भी कहे, उन्हे कोई भी फरक नही पडता। उन्हे कोई भी असर नही होता। फिर भी अहिंसा का पालन सबही लोग यथाशक्ति कर सकते हैं। जितना अहिसा का पालन किया जायगा, उतनी ही मन को सुख और शान्ति मिलेगी।

यदि हम इतिहास के पन्ने उलटे तो हमे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि मनुष्य हिसा से अहिंसा की ओर झुकता गया है। हमारे आदि पूर्वज नर-भक्षक थे। फिर समय जब मनुष्य ने मनुष्य को खाना छोड़ दिया और आखेट करके शशु-पक्षियो का मांस खाना शुरु कर दिया। फिर आगे चलकर मनुष्य ने आखेट के लिए पीछे जंगलो में भटकना छोड दिया, और एक जगह स्थिर होकर खेती करना शुरु कर दिया। धरती माता से अन्न उपजाने लगा। चरागाह और रमते गडेरिये का जीवन छोडकर, सॉस्कृतिक जीवन अपनाया। गॉव और शहर बसाये। कुटुम्ब की सीमाओं से निकलकर जाति और समाज की ओर देखने लगा। यह सब चिन्ह बढ़ती हुई अहिंसा और घटती हुई हिसा का द्योतक है। ऐसा न होता तो मनुष्य-जाति का कभी भी अन्त हो गया होता, जैसे कि बहुत से निम्न श्रेणी के जीवो का हो गया है।

सभी पीर-पैगाम्बरो ने अहिसा का मार्ग दिखलाया है। किसी ने भी हिंसा का प्रचार नही किया। और ऐसा हो भी कैसे सकता था। अहिसा मनुष्य-जाति का नियम है, जैसे हिसा पशु जाति का। आत्मा पशु में निद्रित अवस्था मे रहती है और पशु शारीरिक-शक्ति के अतिरिक्त और कोई शक्ति जानता नही। परन्तु मनुष्य की मानवता उसे दूसरी ओर पुकारती है और आत्मिक बल का संकेत देती है।

—※※—

"योद्धाओं में जैसे वासुदेव श्रेष्ठ हैं, पुष्पों में जैसे अरविन्द श्रेष्ठ हैं, क्षत्रियों में जैसे दन्तवक्र श्रेष्ठ हैं उसी तरह वर्द्धमान ऋृषियों मे श्रेष्ठ थे।

× × × ×

दानों में जैसे अभयदान श्रेष्ठ हैं, सत्य में जैसे निरवद्य वचन श्रेष्ठ हैं, तप में उत्तम ब्रह्मचर्य तप हैं, उसी तरह नायपुत्त लोगों में उत्तम श्रमण थे।

Empty is penance for the sake of fame

भगवान महावीर की साधना पद्धति

—मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी "प्रथम"

भगवान् महावीर राजकुमार थे। उनके लिए सभी प्रकार के सुख-साधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। वे उनका अपने लिए उपयोग भी करते थे। तीस वर्ष की अवस्था तक वे भौतिक सुविधाओ मे रहे। सहसा उन्होने प्रव्रज्या का निर्णय लिया। सभी प्रकार की सुविधाओं को ठुकराकर वे कठोर चर्या के लिए निकल पडे। उनकी प्रतिज्ञा थी, मै व्युत्सृष्टकाय होकर रहूँगा अर्थात् शरीर की किसी भी प्रकार से सार-सम्भाल नही करूंगा। इसमें वे पूर्णतः सफल रहे।

दुरुह साधना

महावीर ने जिस साधना-पद्धति का अवलम्वन लिया था, वह अत्यन्त रोमांचक थी। वे अचेलक थे, तथापि शीत से त्रसित होकर वाहुओं को समेटते न थे, अपितु यथावत् हाथ फैलाये ही विहार करते थे। शिशिर-ऋतु में पवन और जोर से फुफकार मारता, कडकडाती सर्दी होती, तब इतर साधु उससे बचने के लिये किसी गर्म स्थान की खोज करते, वस्त्र लपेटते और तापस लकडियाँ जलाकर शीत दूर करने का प्रयत्न करते, परन्तु, महावीर खुले स्थान में नंगे वदन रहते और अपने बचाव की इच्छा भी नही करते। वही पर स्थिर होकर ध्यान करते। नंगे वदन होने के कारण सर्दी-गर्मी के ही नही, पर, दंश-मशक तथा अन्य कोमल-कठोर स्पर्श के अनेक कष्ट भी वे झेलते थे।

महावीर अपने निवास के लिये भी निर्जन झोपडियो को चुनते, कभी धर्मशालाओं को, कभी प्रथा को, कभी हाट को, कभी लुहार की शाला को, कभी मालियो के घरो को, कभी शहर को, कभी श्मशान को, कभी सूने घरो को, कभी वृक्ष की छाया को तो कभी घास की गंजियो के समीपवर्ती स्थान को। इस स्थानो मे रहते हुए उन्हे नाना उपसर्गों से जूझना होता था। सर्प आदि विषैले जन्तु और गीध आदि पक्षी उन्हे काट खाते थे। उद्दण्ड मनुष्य उन्हे नाना यातनाएं देते थे, गाँव के रखवाले हथियारो से उन्हे पीटते थे और विषयातुर स्त्रियाँ उन्हे काम-भोग के लिए सताती थी। मनुष्य और तिर्यंचो के दारूण उपसर्गों और कर्कश-कठोर शब्दो के अनेक उपसर्ग उनके समक्ष आये दिन प्रस्तुत होते रहते थे। मारने-पीटने पर भी वे अपनी समाधि में लीन रहते।

आहार के नियम भी महावीर के वडे कठिन थे। नीरोग होते हुए भी वे मिताहारी थे। रसो मे उन्हें आसक्ति न थी और न वे कभी रसयुक्त पदार्थों की आकांक्षा ही रहते थे। भिक्षा मे रूखा-सूखा, ठण्डा, वासी, उडद सूखे भात, मंथु, यवादि नीरस धान्य का जो भी आहार मिलता, उसे वे शान्त भाव से और सन्तोष-पूर्वक ग्रहण करते थे। एक वार निरन्तर आठ महीनो तक वे इन्ही चीजो पर रहे। पखवाडे, मास और छः-छः मास तक जल नही पीते थे। उपवास मे भी विहार करते। ठण्डा-वासी आहार भी वे तीन-तीन, चार-चार, पाँच-पाँच दिन के अन्तर से करते थे।

शरीर के प्रति महावीर की निरीहता वडी रोमाचक थी। रोग उत्पन्न होने पर भी वे औषध-सेवन नही करते थे। विरेचन, वमन, तेल-मर्दन, स्नान और दन्तप्रक्षालन नही करते थे। आराम के लिये पैर नही दवाते थे।

आँखो में किरकिरी गिर जाती, तो उसे भी वे नही निकालते। ऐसी परिस्थिति मे आँख को भी वे नही खुजलाते। वे कभी नीद नही लेते थे। उन्हे जव कभी नीद अधिक सताती, वे शीत में मुहूर्तभर चक्रमण कर निद्रा दूर करते। वे प्रतिक्षण जाग्रत रह ध्यान व कायोत्सर्ग में ही लीन रहते।

उत्कटक, गोदोहिका, वीरासन, प्रभृति अनेक आसनों द्वारा महावीर निर्विकार ध्यान करते थे। शीत में वे छाया में बैठकर ध्यान करते और ग्रीष्म में उत्कुटुक आदि कठोर आसनो के माध्यम से चिलचिलाती धूप मे ध्यान करते। कोई उनकी स्तुति करता और कोई उन्हे दण्ड से तर्जित करता या वालो को खीचता या उन्हे नोचता, वे दोनो ही प्रवृत्तियो में समचित रहते थे। महावीर इस प्रकार निर्विकार, कषाय-रहित, मूर्च्छा-रहित, निर्मल ध्यान और आत्म-चिन्तन में ही अपना समय विताते।

महावीर दीक्षित हुए, तव उनके शरीर पर नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यो का विलेपन किया हुआ था। चार मास से भी अधिक भ्रमर आदि जन्तु उनके शरीर पर मंडराते रहे, उनके मांस को नोचते रहे और रक्त को पीते रहे। महावीर ने तितिक्षाभाव की पराकाष्ठ कर दी। उन जन्तुओ को मारना तो दूर, उन्हे हटाने की भी वे इच्छा नही करते थे।

महावीर ने इस प्रकार की शारीरिक कृच्छ्र साधना पर इतना वल क्यो दिया तथा शरीर के स्वभावो पर वे विजय किस प्रकार हुए, जवकि सामान्यतः कोई भी व्यक्ति शरीर के धर्मों की अवगणना नही कर सकता? ये दो प्रश्न ही महावीर की साधना-पद्धति की विभिन्न भूमिकाओ पर प्रकाश डालते है।

कष्ट-साध्य साधना क्यों?

सभी अध्यात्मवादियो का दृढ़ विश्वास है कि आत्मा शरीर रूप कप्सूल मे आवद्ध है। चेतन पर जड का यह आवरण इतना सघन हो गया कि संस्कार विकार मे वदल गये हैं और चैतन्य की क्रिया विकारो को सवल करने में प्रयुक्त होने लगी है। साधना-चैतन्य और जड की इस दुरभिसंधि को समाप्त करने की क्रिया का आरम्भ करती है। उसकी पहली व्यूह-रचना शरीर के साथ होती है। शरीर के द्वारा आत्मा के होने वाले संचालन को रोकने के लिये उपक्रम आरम्भ होता है और सारा नियन्त्रण आत्मा के केन्द्र मे उद्भूत होने लगता है। ऐसी स्थिति में अनिवार्यतया अपेक्षा हो जाती है, कृच्छ्र साधना की। एक वार उससे छटपटाहट अवश्य होती है, क्योकि जन्म-जन्मान्तरो से लगा हुआ अनुवन्ध-टूटना प्रारम्भ होता है। किन्तु, ऐसा हुए विना जड-चेतन का पृथक्करण नही भी हो सकता।

प्राण-वायु पर विजय

कुछ कष्ट-साध्य साधना से विचलित हो गये। उन्हे अपने मार्ग को भी वदलना पडा। महावीर अपने निर्धारित क्रम मे सफल होते गये। उन्हे मार्गान्तरण की आवश्यकता नहीं हुई। दोनो का एक ही उद्देश्य था। फिर इतना अन्तर क्यो हुआ? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये कुछ यौगिक क्रियाओं की गहराई में उतरना आवश्यक होगा। साधक को सवसे पहले भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि शरीर की अनिवार्य आवश्यकताओं पर विजय पाना होता है। इन सवका सम्वन्ध है, प्राणवायु से। शरीर में पाँच प्रकार की वायु होती है। प्राण-वायु उसमें उत्कृष्ट है और उसका सम्वन्ध मन की सूक्ष्म क्रियाओं के साथ है। यही वायु स्नायुओ की प्राण-शक्ति को प्रत्येक कार्य में उद्वुद्ध, प्रेरित तथा क्रियाशील करती है। किन्तु, एक प्रक्रिया ऐसी होती है, जिसके द्वारा क्रियाशीलता को उद्वोध में वदला जा सकता है। जव वह इस प्रकार परिवर्तित हो जाती है, शारीरिक अपेक्षाओं की पूर्ति न होने पर भी

व्यथा की अनुभूति नही होती। फिर देह होता है, किन्तु, देहाध्यास नही होता। महावीर ने इसी प्रक्रिया का आरम्भ किया था और वे इसके द्वारा शरीर-विजय मे पूर्णतः सफल हुए। शरीर उनके अधीन रहा, वे शरीर के अधीन नही रहे।

एक प्रवाह चलता है। उसे यदि बदला नही जाता है, तो जो होता आया है, वही भविष्य मे चलता रहेगा। उसे बदलने के लिये जितना श्रम अपेक्षित होता है, उससे अधिक मार्गान्तरण के चयन में सजगता अपेक्षित होती है। महावीर जब प्रव्रजित हुए, चालू प्रवाह को बदलने की उस प्रक्रिया को ही उन्होने अपना लक्ष्य बनाया और उसमें वे सफल भी हुए। यही कारण है कि उग्र तपश्चरण में भी वे कभी म्लान नही हुए।

शरीर-विज्ञान के अनुसार भी जब-जब रक्त की गति में वेग और गतिमंदता आती है, तब-तब सम्बन्धित अन्य अवयव प्रभावित होते हैं और किसी विकार का आरम्भ हो जाता है। यह विकार रोग के रूप में भी व्यक्त होता है और इन्द्रियज उद्वेग, आवेश, अहं आदि के रूप मे भी प्रकट होता है। प्राण-वायु का जागरण तथा अन्य चार प्रकार की वायुओं की श्लथता रक्त को सम स्थिति को उजागर करती है। यही से सम्बन्धित नाना अनुभूतियाँ गौण हो जाती है और स्व-केन्द्रिता जागरूक। महावीर इस क्रिया मे आरम्भ से ही निष्णात थे, इसीलिए कष्ट-साध्य साधना में उन्हे कष्टो की अनुभूति नही होती थी। जनता को भी इसका ही प्रशिक्षण देते थे। मानसिक उद्वेगो के इस वर्तमान युग में प्राणवायु पर विजय पाने की इस प्रक्रिया की अत्यन्त आवश्यक है।

—※—

भगवान् महावीर, प्रेरणा के अखण्ड स्रोत

दर्शनाचार्य साध्वी श्री चंदनाजी

चैत्र शुक्ल त्रयोदशीका मंगलमय दिन !

भगवान महावीर का जन्मदिन !

अतः उत्सव का दिन !

दिन का अर्थ है अंधकार का मिट जाना और प्रकाश का आना। केवल बाहर ही अंधकार नही है और न बाहर ही प्रकाश है। मनुष्य के जीवन में भी अंधकार और प्रकाश है। आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व विहार की पुण्यभूमि में भगवान महावीर का जन्म हुआ था। और कहना चाहिए विषमता विवाद और वैर के अधकार को मिटाकर समानता संवाद और क्षमा के तेज पुंज भगवान महावीर का जन्म हुआ और उन्होंने उस अमृत प्रकाश को जन-जीवन में विकीर्ण किया था।

प्रतिवर्ष इसी मंगलमयी भावना के साथ हम जन्म दिन मनाते हैं। इस घटना को ढ़ाई हजार वर्ष व्यतीत हो चुके है और यह दिन समानता, मैत्री का प्रतीक बनकर जिसने हमें व्यक्तिगत और सामूहिक विकास की आज भी प्रेरणा देता है।

किसी भी महापुरुष का जन्म-जयन्ति मनाने का अर्थ है सद्वृत्तियो का विकाश ! हमें आज के दिन जन्मोत्सव के मूल मे निहित इस भावना को अक्षुण्ण रखने का संकल्प करना है। इस संकल्प पर ही उत्सव की सार्थकता सिद्ध होगी। यह दिन भारतीय जन मानस के लिए प्रेरणापूर्ण और प्रकाश पूर्ण बने। ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर ने जिस महान संदेश को प्रवाहित किया था आज उसकी अत्यन्त आवश्यकता है वर्गभेद, वर्णभेद, जातिभेद, प्रांतभेद और भाषाभेद सत्ता की दौड़, अमीरो की आवश्यकताएं, गरीबो के अभाव, दलित, पीडित और शोषित वर्ग के प्रति उपेक्षा, नए और पुराने विचारो के संघर्ष, इन प्रश्नो ने जीवन की जडे हिला दी है। ऐसे विकट समय में मैत्री करुणा और सहयोग की भावना से ही प्रश्नो का हल ढूढा जा सकता है। भगवान महावीर ने यही कहा था—प्रश्न और नही है। **समस्या कोई नहीं है। बाहर के भेद तो मिटने से रहे और अगर बाहर से समानता को प्रतिष्ठित भी किया गया और मनुष्य की भावनात्मक समानता की उपेक्षा की तो उस आरोपित समानता से मनुष्य का जीवन निष्कंटक नहीं हो सकता।** आज भी हम देख रहे हैं समानता के हजार-हजार प्रयास के बाद विषमता उतनी ही अधिक है। और उस विसमता से निष्पन्न विषम समस्याएं भी उतनी ही है।

आज के इस महान मंगलमय दिन पर पुनः हम गंभीरता से भगवान महावीर के उपदेश पर विचार कर हमें अपनी समाज रचना के लिए कुछ महत्वपूर्ण संकेत एवं संकल्प लेने की आवश्यकता है।

निजी स्वार्थों से ऊपर उठकर मनुष्य जाति के व्यापक हितो की सुरक्षा के लिए प्रयास करने का मार्ग खोजे। आज सामान्य जनता नही जानती है कि उसे किधर जाना है महावीर संदेश से उदात्त मार्ग-दर्शन ले, तो हमें प्रकाश, प्रेरणा और प्रगति प्राप्त हो सकती है।

—✻::✻—

भावना

रचयिता— हीराचन्द बोहरा बी. ए एल एल बी विशारद बजबज

कर्त्तव्य पथ पर हम चलें,
सबकी यही हो कामना।
हँसकर सहें सब आपदा
जीवन की यह हो साधना।
न बुरा किसी का करे कभी, मन में रहे यह भावना।
सुख से जिएँ जग मे सभी, प्रभु से यही इक प्रार्थना॥

जग मे दुखी इन्सान की
सेवा करें यह चाहना
विश्वास हो प्रभु में सदा
है बस यही इक अर्चना॥
चाहे प्राण जाएँ या रहे, अन्याय से बचते रहे
संघर्ष के हर कदम पर, बढ़ते रहें हँसते रहे॥

आपस की रंजिश दूर हो,
सब प्रेम से मिल कर रहें,
सुख शान्ति का वातारण
इस विश्व मे हरदम रहे॥
पापो से हम बचते रहें, बस इक यही है चाहना
बन जाऊँ प्रभु मैं आपसा, मेरी यही इक भावना॥

—**—

समदृष्टि भगवान महावीर

प्रो० पृथ्वीराज जैन, एम० ए०, शास्त्री अम्बाला शहर

भारतीय धर्म एवं दर्शन के मर्मज्ञ अव इस विषय में प्रायः एकमत है कि इस पवित्र भूमि पर अतीव प्राचीन काल से दो सास्कृतिक धाराएं प्रवाहित रही है—वैदिक अथवा ब्राह्मण, श्रमण दोनो मे कौन सी पूर्ववर्ती है, यह अभी विवाद का विषय है। तदपि इस तथ्य की उपेक्षा नही की जा सकती कि दोनो समकालीन अवश्य रही है। उपलब्ध साहित्य मे ऋग्वेद प्राचीनतम माना जाता है। उसके अध्ययन से यह स्पष्ट है कि उस समय वेद-विरोधिनी विचार धारा की भी प्रवलता थी। उस विचारधारा का प्रतिनिधित्व वर्तमान ज्ञात धाराओ मे जैन धर्म सवसे अधिक करता है। वौद्ध-धर्म का उदय पर्याप्त समय वाद हुआ और साख्य दर्शन, वैदिक दर्शन मे ही समाविष्ट हो गया। ऐसे भी विद्वान है जो युक्ति और प्रमाण के आधार पर जैन विचार धारा को भारत की मौलिक विचार धारा मानते है। वेदानुयायी आर्य वाहिर से आए, यह निश्चित प्रायः तथ्य है।

वैदिक व श्रमण परम्परा :—

वैदिक और श्रमण परम्परा में जो मूल भेद है, उसे एक शब्द में समया या समत्व से प्रतिपादित किया जा सकता है। **श्रमण धर्म का आचार-विचार समता की आधार शिला पर स्थिर है जब कि वैदिक आचार-विचार के मूल में वैषम्य अथवा विषमता के दर्शन होते हैं।** यत्र-तत्र श्रमण परम्परा मे असमानता की झलक दृष्टिगोचर होगी और वैदिक परम्परा में समता पोषक उल्लेख उपलब्ध होंगे, परन्तु वे अपवाद रूप अथवा आयतीत हैं। **वैदिक जीवन वर्णाश्रम धर्म पर आधारित है जो मानव-मानव में उच्च-नीच की दिवारें खड़ी करता है। श्रमण जीवन अथवा जैन तीर्थंकरों की संघ-व्यवस्था, समानता समानाधिकार मानव क्या प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव पर अवलम्बित है।** इस लेख मे जैनो के इस युग के चरम तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे प्रतिपादित समता परकिंचित् प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा।

श्रमण शब्द का अर्थ ही इस वात का द्योतक है कि यह विचार-धारा विश्व मे समता की सन्देशवाहक है। श्रमण को प्राकृत मे **'समन'** कहते है। इससे तीन अर्थो की ध्वनि परिस्फुटित होती है—**सम, शम, श्रम।** सम का अर्थ समानता किंवा समभाव का है। 'मिन्ती मे सव्व भूएसु,—समस्त प्राणियो से मेरा मैत्री भाव है, मेरा किसी से भी वैर भाव नही, यह भावना इसी सम का सुमधुर फल है। **शम का अर्थ शमन, शान्ति उपशम है।** आत्मा मे उपसम भाव का उदय तभी सम्भव है जव हम हरेक प्राणी को आत्मोपम्य दृष्टि से देखें। उपशम तभी होगा जव राग द्वेष का नाश होगा। राग द्वेष उस अवस्था मे होते है जब हम प्राणियो को समान दृष्टि से नही देखते, किसी में ममता भाव रखते है और किसी से वैर-विरोध पनपने देते है। भगवान महावीर कहते है—'उवसमसार सामण्णं' अर्थात् श्रमण धर्म का सार उपशम या शान्ति भाव है। अतः शम का ध्येय भी सम का पोषण है। श्रम का भावार्थ पुरुषार्थ और तप आदि से है। अनादि काल से सांसारिक आत्मा कर्ममल से अवलिप्त होने के कारण मोह एवं तद्जनित विषमता से लिप्त है। उस अवलेप को दूर करने का साधन श्रम किवा तप है जो कर्मो के आवरण को दूर कर हमे समता-आराधना की ओर अग्रसर करता हुआ शुद्ध परमात्म-स्वरूप की अनुभूति कराएगा। इस प्रकार

श्रम समभाव का मानो पर्यायवाची शब्द है। भगवान महावीर जब गौतम को यह कहते है कि जो प्राप्त का समविभाजन का नही करता, उसकी मुक्ति नही होती, तब यह सुस्पष्ट हो जाता है कि वे कितने महान् समतावादी थे और किस प्रकार साम्य को आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन का मूलाधार समझते थे। आचारांग मे स्पष्ट है कि जो तीर्थकर भूतकाल में हो गये, इस समय है या भविष्य मे होगे वे सभी उपदेश देते हैं कि किसी प्राणी का न तो वध करना चाहिये ओर न उमे किसी प्रकार पीड़ित करना चाहिए। **भ० महावीर की समता किसी विशेष समुदाय, समाज, देववर्ग, मानव वृन्द या दानव समूहतक ही सीमित न थी, वह छोटे से छोटे प्राणी के प्रति भी समान रूप से व्यवहृत थी।** हम उनकी समदृष्टि का अनेक क्षेत्रो में स्पष्ट रूपेण अवलोकन कर सकते है।

सर्व प्रथम हम आध्यात्मिक क्षेत्र को ले। सिंह चिह्नवाले वर्धमान महावीर की सिंह गर्जना थी कि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। कहॉ तो वैदिक परम्परा की उस युग मे यह मान्यता कि 'स्त्री शूद्रौनाधीताम्' नारीव शूद्रो को पढ़ाया ही न जाय, और कहॉ महावीर का उद्घोष कि साधना द्वारा हरेक मोक्ष या मुक्ति का अधिकारी है। मोक्ष के द्वार लिङ्ग, ओर जाति के विना प्रत्येक साधक के लिए खुले है। वे मानते थे कि कोई भी आत्मा शत प्रतिशत दुष्ट नही, आध्यात्मिक विकास के अंकुर सब मे विद्यमान है। उन्हे परिस्फुटित करने के लिए आलोक और ज्ञान रूपी वर्षा की आवश्यकता है। प्रत्येक वाल्मीकि कभी वलिया डाकू था और प्रत्येक वलिया महर्षि वाल्मीकि वन सकता है। कषायमुक्तिः किलमुक्तिखे—मुक्ति किसी विशेष धर्म या मान्यता अथवा आचार मे नही, आन्तरिक कषाय रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में है। नवकार मंत्र मे इसीलिए किसी व्यक्ति विशेष को चयन न कर गुणधारी पञ्च परमेष्टी को नमस्कार किया जाता है। आचार्य हेमचन्द्र कहते है कि भवचक्र के वीजांकुर राग-द्वेष जिसके नष्ट हो गए हो वह ब्रह्म हो, शिव हो, जिन हो, उसे मेरा नमस्कार। आचार्य हरिभद्र का कथन है—महावीर के प्रति मेरा पक्षपात नही, कपिलादि दार्शनिको से द्वेष नही, जिसका कथन युक्तियुक्त हो उसे माना जाय।

सामाजिक क्षेत्र पर दृष्टिपात करे। महावीर ने उच्च स्वरेण घोषणा की कि मनुष्य कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से शुद्र होता है, जन्म से कदापि नही। वाह्य वेश भूषा और जन्मजात उच्च-नीच भाव पर कुठारघात करते हुए उन्होने कहा—ओम् का जाप करने से कोई ब्राह्मण नही होता, सिर मुंडा लेने से कोई साधु नही वन जाता, केवल कुशावस्त्र किसी को तपस्वी नही वनाते और नही अरण्य निवासी किसी को मुनि के सिहासन पर विठा देता है। ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, समता से साधु, तपश्चर्या से तपस्वी और ज्ञान से मुनि होता है। उन्होने साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका रूपी चार स्तम्भो पर आश्रित संघ का संगठन कर गृहस्थ सन्यास दोनो जीवन में नारी को समानाधिकार प्रदान किया। उनका धर्म सभी वर्णों, जातियो व सम्प्रदायो के लिए था। वे मानते थे कि दुराचारी साधु को उसका मुनिवेश रक्षित नही कर सकता। आन्तरिक पवित्रता विहीन वाह्य क्रियाचार की व्यर्थता वे सुरीत्या समझते थे। वे कहा करते थे कि यदि वाहरी स्नान ही मुक्ति का दाता हो तो जलचर जीव सर्व प्रथम मुक्त हो जाते।

अन्य प्राणियों के प्रति हमारा दृष्टिकोण कैसा हो? आचारांग में आदेश है कि **दूसरों को उसी दृष्टि से देखो जिससे निज आत्मा को देखते हो।** महावीर की मान्यता थी कि दूसरे प्राणी केवल जीए, यही पर्याप्त नही, प्रद्युत हमें यह प्रयास करना है कि वे सुखपूर्वक जी सके। उनका आदेश था कि यदि हम शरीर से किसी का हित करने मे असमर्थ हो तो अन्तरात्मा में भावना-चतुष्टय का ही आराधना करे। वे चार भावनाएँ है—सभी प्राणियो से मैत्री भाव, गुणीजनो के लिए प्रमोद-हर्ष का भाव, दुःखियो के प्रति करुणा भाव, विरोधियो के प्रति माध्यस्थ अथवा तटस्थ भाव। निस्सन्देह ये सभी विचार महावीर को सम-दृष्टि सिद्ध करते है।

इससे भी एक पग आगे जाकर भगवान् महावीर अन्य धर्मों के प्रति भी समता पर आधारित उदार दृष्टि-

कोण अपनाने का आग्रह करते है । **स्याद्‌वाद समदृष्टि से प्रत्येक मान्यता में सत्यांश की, गुणात्मकता की खोज करता है ।** वह यह कहता है कि जो मेरा, वह सच्चा यह ढिढ़ोरा मत पीटो । यह कहो कि जो सच्चा वह मेरा । कितनी विशाल हृदयता, सहिष्णुता और गुणग्राहकता है इस स्याद्वाद सिद्धान्त मे । महावीर के उपदेश मे कही भी ऐसी लक्ष्मण रेखा नही, जिसका उलघन किसी के लिए वर्जित हो । उन्होने मानव-जीवन की श्रेष्ठता, पवित्रता, परमात्मरूपकता पर बल दिया ।

अन्त मे श्रमण शब्द की कुछ व्याख्याएँ इस मान्यता को संपुष्ट करती है कि भगवान् महावीर पूर्णतः सम-दृष्टि थे । "श्रामण ममता, अहंकार से रहित, आसक्ति विहीन होता है । वह सब मे समान भाव रखता है । लाभा-लाभ, सुख दुःख, जीवनमरण, निन्दा प्रशंसा, मानापमान मे समभाव ही रहता है ।" "जो किसी से द्वेष नही करता, सब से प्रेम करता है, वही सच्चा श्रमण है ।" "श्रमण न इस लोक की कामना करता है न परलोक की । सर्प हो या चन्दन, आहार हो या अनाहार, वह समभाव ही रहता है ।"

"जैसे मुझे दुःख अनिष्ट है वैसे ही दूसरे प्राणियो को । इस प्रकार जो न तो हिसा करता है और सबके प्रति समान अथवा तुल्य व्यवहार करता है, वही श्रमण है ।"

With

best Compliments

from

★

M/s Keshavlal J Khanderia

167, Old China Bazar Street,

Calcutta-7.
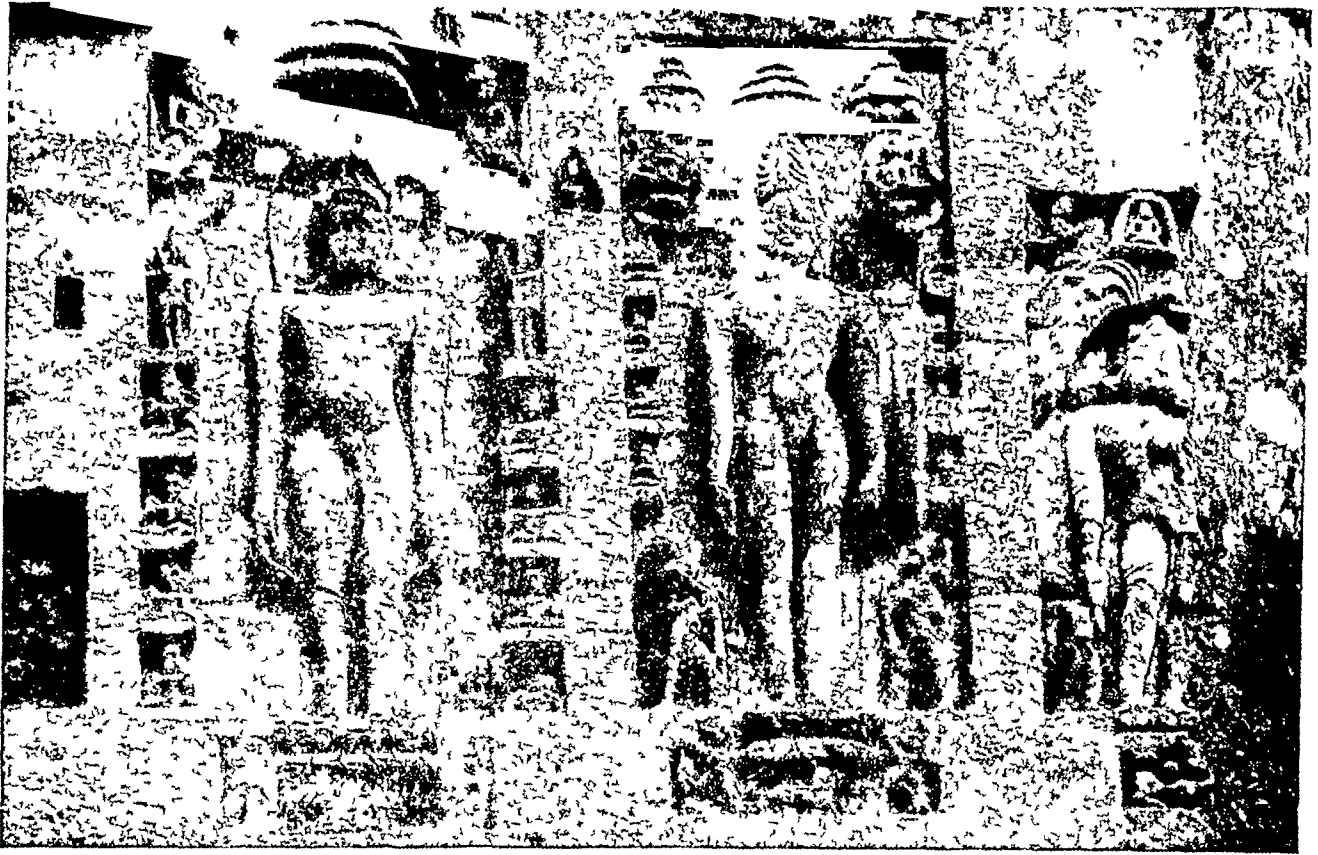
Risabhanath with Ambika Khandagiri, Orissa
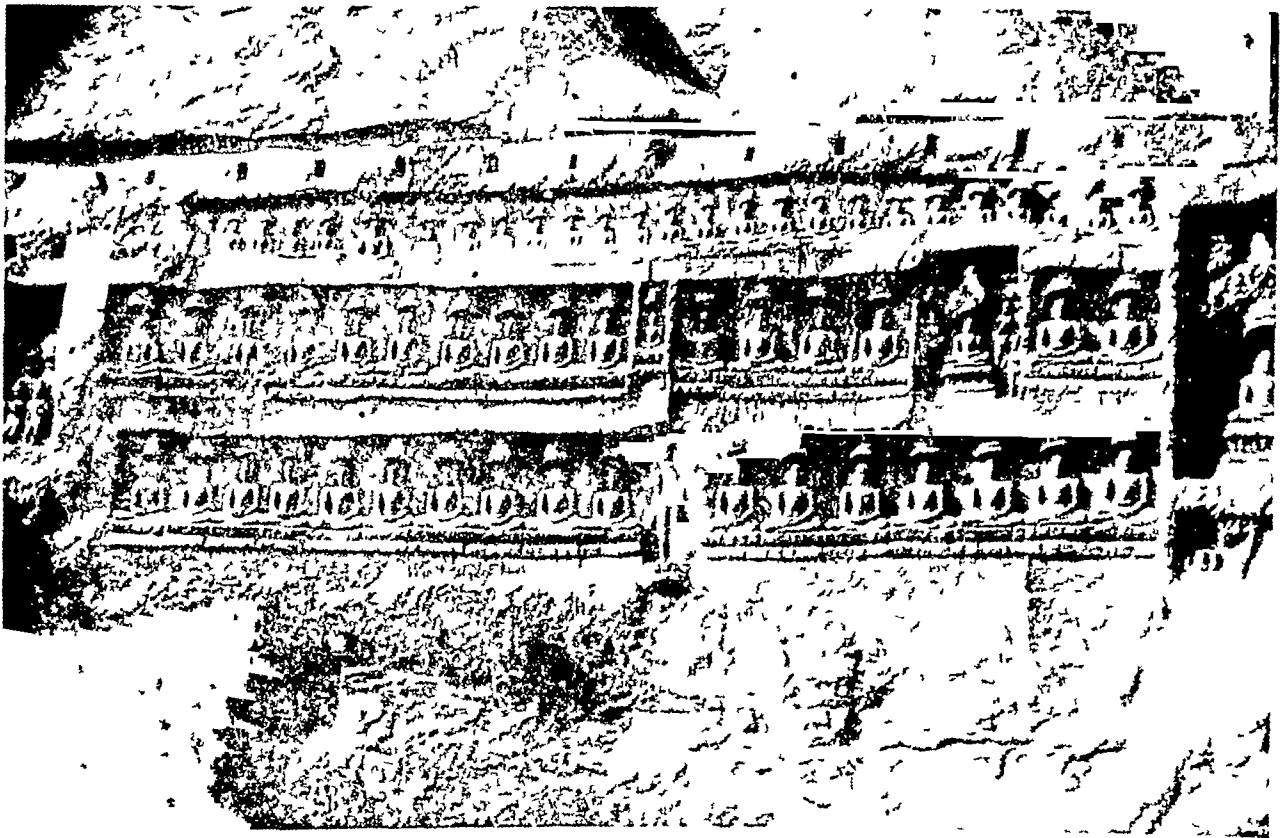
Rock-cut Sculptures, Kalugumalai, Tamilnad

Courtesy—Jain Bhawan

क्षमा और अहिंसा की सर्वग्राह्यता

डा० दरबारीलाल कोठिया

शान्ति और सुख ऐसे जीवन—मूल्य है जिसकी चाह मानवमात्र को रहती है। अशान्ति और दुःख किसी को भी इष्ट नही, ऐसा सभी का अनुमान है अस्पताल के उस रोगी से पूछिये, जो किसी पीड़ा से कराह रहा है और डाक्टर से शीघ्र स्वस्थ होने के लिये कातर होकर याचना करता है। वह रोगी यही उत्तर देगा कि हम पीड़ा की उपशान्ति और चैन चाहते है। उस गरीव और दीन-हीन आदमी से प्रश्न करिये, जो अभावों से पीडित है। वह भी यही जवाब देगा कि हमें ये अभाव न सताये और हम सुख से जियें। उस अमीर और साधन सम्पन्न व्यक्ति को भी टटोलिये जो वाह्य साधनो से भरपूर होते हुए भी रात-दिन चिन्तित है। वह भी शान्ति और सुख की इच्छा व्यक्त करेगा। युद्ध भूमियो मे लड रहे उस योद्धा से भी सवाल करिये जो देश की रक्षा के लिये प्राणोत्सर्ग करने के लिये उद्यत है। उसका भी उत्तर यही मिलेगा कि वह अन्तरग में शान्ति और सुख का इच्छुक है। इस तरह विभिन्न स्थितियो में फंसे व्यक्ति-व्यक्ति की आन्तरिक चाह शान्ति और सुख की प्राप्ति की मिलेगी। मनुष्य संवेदनशील है। यह संवेदनशीलता हर मनुष्य में चाहे वह किसी भी देश, किसी भी जाति और किसी भी वर्ग का हो, पायी जायेगी। इसका संवेदन होने पर उसे शान्ति और सुख मिलता है तथा अनिष्ट का संवेदन उसके अशान्ति और दुःख की परिचायक है।

इस सर्वेक्षण से हम इस परिमाण पर पहुँचते है कि मनुष्य के जीवन का मूल्य शान्ति और सुख है। यह वात उस समय और अधिक अनुभव मे आ जाती है जव हम किसी युद्ध से विरत होते है या किसी भारी परेशानी से मुक्त होते हैं। दर्शन और सिद्धान्त ऐसे अनुभवो के आधार से ही निर्मित होते और शाश्वत वन जाते है।

जब मन में क्रोध की उदभूति होती है तो उसके भयंकर परिणाम दृष्टि गोचर होते है। अमेरिका ने जव जापान पर युद्ध में उसके दो नगरो को वमो से ध्वस कर दिया तो विश्व ने उसकी भर्त्सना की। फलतः सव ओर से शान्ति की चाह की गयी। क्रोध के विषैले कीटाणु केवल आस-पास के वातावरण और क्षेत्र को ही ध्वस्त नही करते खुद का भी नाश कर देते है। हिटलर और मुसोलनी के क्रोध ने उन्हे विश्व के चित्र पर से सदा के लिये अस्त कर दिया। दूर न जाये, पाकिस्तान ने जो क्रोधोन्माद का प्रदर्शन किया उसने पूर्वी हिस्से को उससे हमेशा के लिये अलग कर दिया। व्यक्ति का क्रोध कभी-कभी भारी से भारी हानि पहुँचा देता है। इसके उदाहरण देने की जरूरत नहीं है यह सर्वविदित है।

क्षमा एक ऐसा हो अस्त्र वल है जो क्रोध के वार को निरर्थक ही नही करता, क्रोधी को नमित करा देता है। क्षमा से क्षमावान की रक्षा होती है, उससे उनकी भी रक्षा होती है, जिनपर वह की जाती है। क्षमा वह सुगंध है जो आस-पास के वातावरण को महका देती है और धीरे-धीरे हरके हृदय में वह वैठ जाती है। क्षमा भीतर से उपजती है, अतः उसमें भय का लेशमात्र भी नही रहता। वह वीरो का वल है, कायरो का नही, कायर तो क्षण-क्षण में भयभीत और अविजित होता रहता है। पर क्षमावान निर्भय और विजयी होता है। वह ऐसी विजय प्राप्त करता है जो शत्रु को भी उसका वना देती है। क्षमावान को क्रोध आता नही, उससे वह कोसो दूर रहता है।

वास्तव में क्षमा-क्षमता सहन शीलता मनुष्य का एक ऐसा गुण है जो दो नही, तीन नही, हज़ारो, लाखो और करोडों मनुष्यी को जोडता है उन्हे एक-दूसरे के निकट लाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी विश्व संस्था इसी के वल पर खडी हो सकी है और जव तक उसमे यह गुण रहेगा तव तक वह वना रहेगा।

तीर्थंकर महावीर में यह गुण अतीव था। फलतः उनके निकट जाति और प्रकृति विरोधी प्राणी-सर्प-नेवला, सिंह-गाय जैसे भी आपसी वैर भाव को भूलकर आश्रय लेते थे। मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? उनकी दृष्टि में मनुष्य मात्र एक थे। हाॅ, गुणो के विकास की अपेक्षा उनका दर्जा ऊँचा होता जाता था। और अपना स्थान-ग्रहण करता जाता था। जिनकी दृष्टि पूत हो जाती थी वे सम्यकृष्टि, जिनका दृष्टि के साथ ज्ञान पवित्र (असद्‌भवमुक्त) हो जाता था वे सम्यकज्ञानी और जिसका दृष्टि और ज्ञान के साथ आचरण भी पावन हो जाता था वे सम्यक चारित्री कहे जाते थे और वैसा ही उन्हे मान सम्मान मिलता था।

क्षमा यथार्थ में अहिंसा की ही एक प्रकाशपूर्ण किरण है, जिससे अन्तरतम सुआलोकिस हो जाता है। अहिसक प्रथमतः आत्मा ओर मन को वलिष्ठ वनाने कें लिये इस क्षमा को भीतर से विकसित करता, गाढ़ा वनाता और उन्नत करता है। क्षमा के उन्नत होनेपर उसकी रक्षा के लिये हृदय मे कोमलता सरलता और निर्लोभ-वृति की वाकी (रक्षकावलि) रोपता है। अहिसा को ही सर्वांगपूर्ण वनाने के लिये सत्य, अचौर्य, शील और अपरिग्रह की निर्मल एवं उदान्त वृतियो का भी वह अहर्निश आचरण करता है।

अहिंसा का वास्तिवक स्वरूप

सामान्यतया अहिसा उसे कहा जाता है जो किसी प्राणी को न मारा जाय। परन्तु वह अहिंसा की वहुत स्थूल परिभाषा है। तीर्थंकर महावीर ने अहिसा उसे वतलाया जिससे किसी प्राणी को मारने का न मन में विचार आये, न वाणी से कुछ कहा जाय और न हाथ आदि की क्रियाए की जाये। तात्पर्य यह कि हिंसा के विचार, हिंसा के वचन और हिंसा के प्रयत्न न करना अहिसा है। यही कारण है कि एक व्यक्ति हिसा का विचार न रखता हुआ ऐसे वचन वोल देता है या उसकी क्रिया हो जाती है जिससे किसी जीव की हिसा सम्भव है तो उसे हिंसक नही माना गया है। प्रमत्तयोग कषाय से होनेवाला प्राण व्ययरोपण ही हिंसा है। हिंसा और अहिंसा वस्तुतः व्यक्ति के भावो पर निर्भर है। व्यक्ति के भाव हिसा के है तो वह हिसक है और यदि उसके भाव हिंसा के नही हैं तो वह अहिसक है। इस विषय में हमे वह मछुआ ओर कृषक उदाहरण है मछुआ जो जलाशय में जाल फैलाये वैठा है और प्रतिक्षण मछली ग्रहण का भाव रखता है, पर मछली पकड मे नही आती तथा कृपक जो खेत जोतकर अन्न उपजाता है और किसी जीव के घात का भाव नही रखता, पर अनेक जीव खेत जोतने से मरते हैं। वास्तव में मछुआ के क्षण-क्षण के परिणाम हिंसा के होने से वह हिसक कहा जाता है और कृषक के भाव हिंसा के न होकर अन्न उपजाने के होने से वह अहिंसक माना जाता है। महावीर ने हिसा-अहिंसा को भाव प्रधान वतलाकर उनकी सामान्य परिभाषा से कुछ ऊँचे उठकर उक्त सुक्ष्म परिभाषाएं ऐसी है जो हमे पाप और वंचना से वचाती है तथा तथ्य को स्पर्श करती है।

अहिसक दृष्टिकोण व आवश्यक हिंसा

अहिंसक खेती कर सकता है, व्यापार धन्धे कर सकता है और जीवन रक्षा तथा देश रक्षा के लिये शस्त्र भी उठा सकता है क्योकि उसका भाव आत्मरक्षा का है, आक्रमण का नहीं। यदि वह आक्रमण होनेपर उसे सह लेता है तो उसकी वह अहिसा नही है, कायरता है। कायरता से वह आक्रमण सहता है और कायरता में भय आ

हो जाता है तथा भय हिंसा का ही एक भेद है। वह परघात न करते हुये भी स्वघात करता है। अतः महावीर ने अहिसा की वारीकी की न केवल स्वय समझा और आचरित किया, अपितु उसे उस रूप में ही आचरण करने का उन्होंने उपदेश दिया।

यदि आज का मनुष्य मनुष्य से प्रेम करना चाहता है और मानवता की रक्षा चाहता है तो उसे महावीर की इस सूक्ष्म क्षमा और अहिंसा को अपनाना ही पडेगा। वह सम्भव नही कि वाहर से हम मनुष्य प्रेम की दुहाई दें ओर भीतर से कटार चलाते रहे। मनुष्य प्रेम के लिये अन्तस और वाहर दोनो में एक होना चाहिये। कदाचित् हम वाहर प्रेम का प्रदर्शन न करें तो न करें, किन्तु अन्तस में तो वह अवश्य हो। तभी विश्वमानवता जी सकती है ओर उसके जीनेपर अन्य प्राणीयो पर भी करुणा के भाव विकसित हो सकते हैं।

क्षमा और अहिंसा ऐसे उच्च सद्भावपूर्ण आचरण है जिनके होते ही समाज में, देश में, विश्व में और जन-जन मे प्रेम और करुणा के अंकुर उगकर फूल-फूल सकते हैं तथा सभी सुखी वन सकते हैं।

—※—

पधारो भगवान महावीर विश्व का करने को कल्याण

(रचयिता—अनूपचन्द जैन, न्यायतीर्थ जयपुर)

तुम्हारा अभिनन्दन हे वीर !
अहिंसा साक्षात् अवतार
तुम्हारा शत शत वंदन नाथ
सत्य की सुखद मूर्ति साकार ॥
तुम्हारा विश्व शाति के दूत नाम से होता है सम्मान ॥ पधारो ॥

जन्म ले कुण्डलपुर में देव !
बने सिद्धारथ राजकुमार
कहाये महावीर अति वीर
मिटा कर विषधर की फुंकार ॥
अल्प वय में ही सन्मति आप हो गये थे प्रकाण्ड विद्वान ॥पधारो॥

जगत परिवर्तन शील विचार !
चले वन छोड़ राजसी ठाठ
तोड़कर जन परिजन से मोह
पढ़ाने सत्य अहिंसा - पाठ ॥
दिखाने सीधा सच्चा मार्ग करे जो स्व पर का कल्याण ॥पधारो॥

स्वयं हो आतम साधना लीन !
किया उस दिव्य ज्योति को प्राप्त
मिला सुख दर्शन ज्ञान अनन्त
हो गये आप्त पूर्ण पर्याप्त ॥
रहा कुछ नहीं जानना शेष दिया तव यह संदेश महान ॥पधारो॥
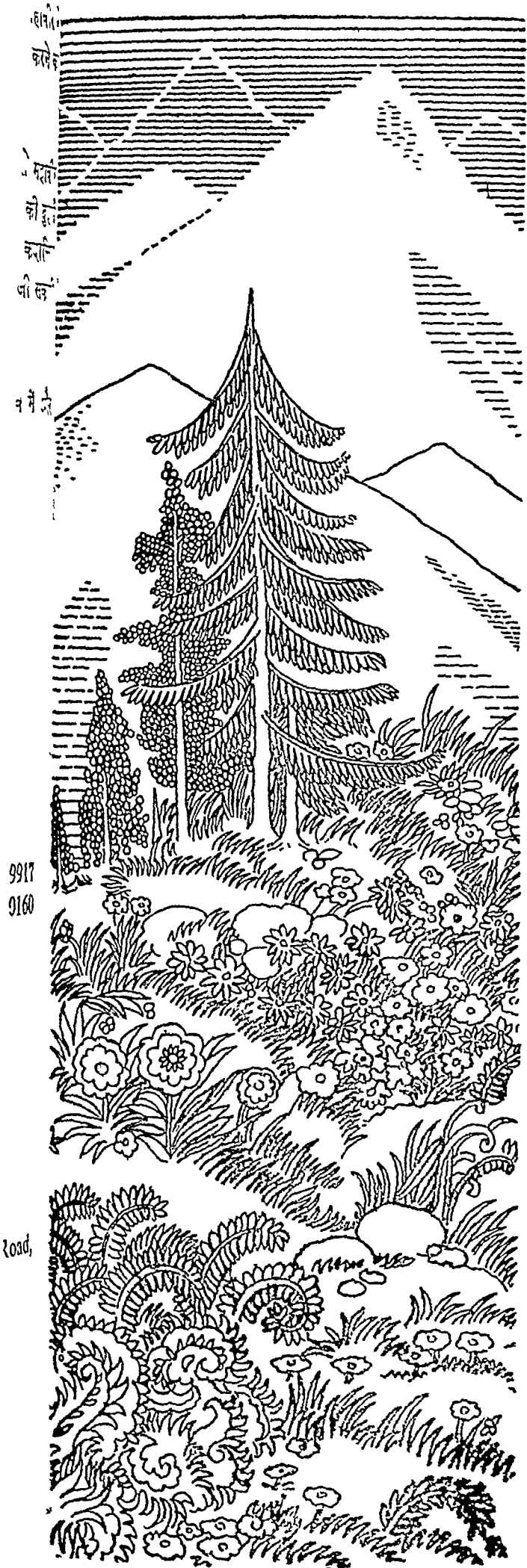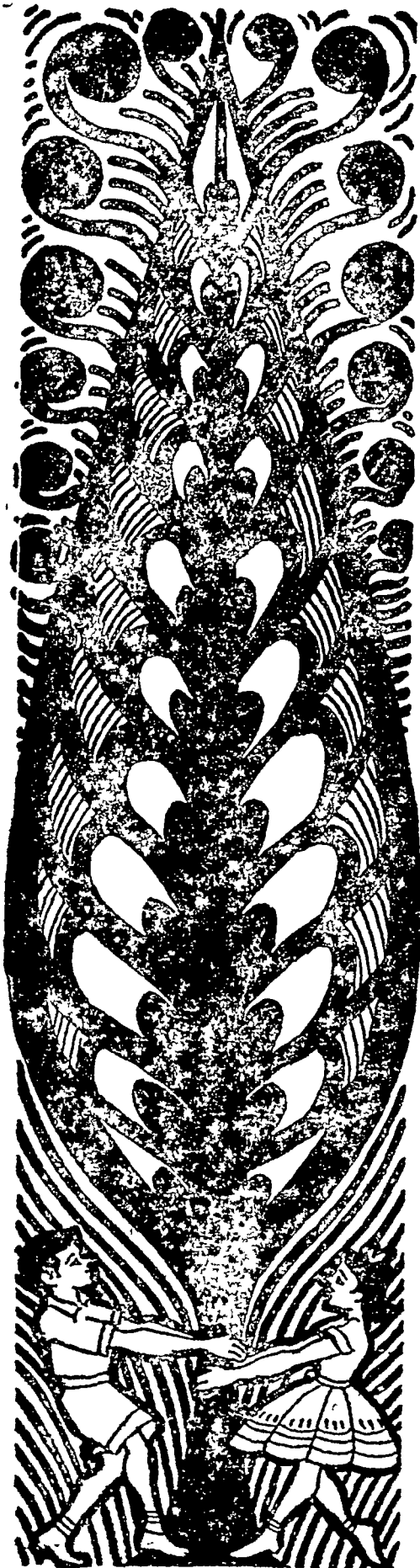
नहीं है प्राणि मात्र में भेद।
सभी है जग के जीव समान
नहीं है धनिक दीन में भेद
राव औ रंक समझ अज्ञान ॥
दलित दुखियो से करना प्यार, पाप से घृणा करो नादान ॥पधारो॥

समन्वय सीखो आग्रह छोड।
वचन में स्याद्वाद सिद्धान्त
कथन में अनेकान्त का योग
मिलाओ सभी द्वंद हो शान्त ॥
सभी धर्मों का ये ही सार अहिंसा मय आचार प्रधान ॥पधारो॥

बुरे हैं जाति पांति के रोग।
साम्प्रदायिकता की यह होड़
बुरे है रूढ़ि अन्ध विश्वास
बढ़ो अब आगे इनको छोड़ ॥
त्याग छल, छद्म और पाखण्ड, बढ़ाओ आज राष्ट्र की शान ॥प०॥

परिग्रह आवश्यक से अधिक।
कभी ना रखो अपने पास
बांट दो सबको युग के अनुसार
यही है सच्चा आत्म-विकास ॥
विषय में अनाशक्ति ही योग, धार कर कर लो अभ्युत्थान ॥पधारो॥

परस्पर वैर भाव को छोड़।
विषमता की दो खायी पाट
प्रेम बंधन में बंधो 'अनूप'
दिखा दो अपना रूप विराट ॥
विश्व बन्धुत्व भावना जगे यही हो पावन लक्ष्य महान ॥पधारो॥

पधारो महावीर भगवान
विश्व का करने को कल्याण ॥

त्यागवीर भगवान महावीर

—श्री अगरचन्द नाहटा

जैन धर्म के अनुसार काल अनन्त है, उत्थान एवं पतन व रूप परिवर्तन का चक्र निरन्तर चलता रहता है, परिवर्तन को प्रधानता देते हुए काल चक्र को दो भागो मे बॉट दिया गया है, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इनमे से प्रथम मे क्रमशः विकास होता है और दूसरे मे ह्रास, वर्तमान काल को अवसर्पिणी काल कहा जाता है, इसके प्रारम्भ मे मानव जीवन भोग प्रधान था। यद्यपि उस समय भोगोपभोग के साधन बहुत ही सीमित थे पर उस काल के मानव त्याग व धर्म को अपना नही सके थे, इसलिए उसे भोग भूमि का काल कहा जाता है, इसके पश्चात् यद्यपि भोगोपभोग के साधन पूर्वापेक्षा बहुत अधिक अविष्कृत प्रादुर्भूत हुए पर साथ ही उनके त्याग ने वाले महापुरुष भी अनेक हुए।

प्रारम्भिक तीनो आरो मे मनुष्य का जीवन एक प्राकृतिक ढाँचे मे ढला हुआ-सा था। जन्म के समय मे एक बालक और बालिका साथ ही उत्पन्न होते थे अतः उन्हे युगलिक कहा जाता है वे प्राकृतिक प्रकृति की छाया मे वडे होते और स्त्री-पुरुष का व्यवहार (संगम-काम भोग) करते उनके खान-पान वस्त्रादि की आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाती, इसलिए उन्हे अन्य काम या श्रम करके उत्पादन करने की आवश्यकता नही रहती, जैन मान्यता के अनुसार आज भी इस विश्व में कई क्षेत्र ऐसे है जिन्हे युगलिको की भोग भूमि की संज्ञा प्राप्त है।

त्याग मार्ग के प्रथम पुरस्कर्ता :—तीसरे आरे के अन्त मे भ० ऋषभदेव उत्पन्न हुए। उन्होने युग की आवश्यकता के अनुसार विवाहादि के सम्बन्धो मे परिवर्तन किया। राजनीति, विद्या, कलाका प्रवर्तन किया। कृषि, असि, मसिका व्यवहार होने के कारण तब से यह क्षेत्र 'कर्म-भूमि' कहलाने लगा। प्राकृतिक साधनो वृक्षो के फल की कमी और आवश्यकताओ की वृद्धि द्वारा जो लोक-जीवन में असंगति एवं असुविधा उत्पन्न हो गई थी, उसका समाधान भगवान् ऋषभदेव ने किया, अतः वे सर्वप्रथम 'राजा' व लोक-नेता कहलाये। गृहस्थी भोगी जीवन के अनन्तर उन्होंने त्यागमय जीवन को अपनाया और सर्वप्रथम त्याग का आदर्श उपस्थित कर जनता को उसकी ओर आकर्षित किया। त्याग धर्म के प्रति आस्था रखने वाले श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी इन चतुर्विध तीर्थ-संघ के स्थापक होने से वे प्रथम तीर्थंकर कहलाये। उनकी भव्य एवम् उदात् परम्परा मे अन्य २२ तीर्थंकरो के हो जाने के बाद २४वें तीर्थंकर भ० महावीर हुए। उनके पश्चात् अन्य कोई तीर्थंकर इस अवसर्पिणीकाल मे इस भरत क्षेत्र मे नही होने के कारण वे चरम तीर्थङ्कर कहलाते है।

भगवान महावीर का मूल याने जन्म नाम वर्द्धमान था, पर उनकी अद्‌भुत धीरता की ख्याति उतनी अधिक वढ़ी की वर्द्धमान नाम केवल शास्त्रो मे ही सीमित रह गया, प्रसिद्धि 'महावीर' नाम को ही मिली, भारतीय संस्कृति मे वीर शब्द केवल रणवीर के लिये ही प्रयुक्त नही होता, अपितु दान एवं त्यागादि धर्मो मे प्रकर्षता करने वाले भी दानवीर से सम्बोधित किये जाते है। महावीर का तप भी महान् था, अतः उन्हें तपवीर भी कहा जा सकता है। दीक्षा के पूर्व १ वर्ष तक निरन्तर दान देते रहने से 'दानवीर' तो थे ही, पर दान एवं तप दोनो का

समावेष त्याग में ही किया जा सकता है। अतः मैने प्रस्तुत लेख के शीर्षक मे उनके आगे त्यागवीर विशेषण रखा है। अब भगवान महावीर की आदर्श त्याग-वीरता पर संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

यह शरीर भोगो के द्वारा उत्पन्न होता है और उन्ही से बढ़ता है अतः जीवन मे पौद्गलिक भागो का भी महत्वपूर्ण स्थान है। एक तरह से आहार, मैथुन आदि की जीवो की प्राकृतिक आवश्यकताएँ भी कहा सकता है, क्योंकि इनके बिना जीवन चल नही सकता, टिक नही पाता पर बन्धन का कारण होने से भोग, मोक्ष मार्ग का विरोधी है। यह संसार इन भोगो की आसक्ति पर ही आश्रित या आधारित है। इसलिये महापुरुषो ने भोग-रूपी कीचड़ से ऊपर उठकर त्याग को प्रधानता दी। जीवन धारण के लिये खान-पान का उपयोग जितने परिमाण में अनिवार्य है, उसको अनासक्ति पूर्वक ग्रहण करते हुए भोगोपभोगो को घटाते जाना और त्याग की ओर बढते जाना ही आध्यामिक जाग्रति है। विषय भोगो का आदर पौद्गलिक आसक्ति है। जहाँ तक हमारा देहाध्यास आत्मा गौण रहेगी। भोगो को बन्धन का कारण एवं त्याग को मुक्ति का मार्ग बतलाया है।

वैदिक सस्कृति मूलतः यज्ञ प्रधान थी पर श्रमण सस्कृति के प्रभाव से उसमे भी सन्यास या त्याग मार्ग को सर्वोच्च स्थान देना पडा यद्यपि उसमे ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आश्रम के बाद त्याग को धारण किया जा सकने का विधान है। जैन संस्कृति मे त्याग-निवृति प्रधान है। जो व्यक्ति सन्यास धारण नही कर सकते, वे गृहस्थ धर्म अणुव्रती का पालन करे, यह विधान होने पर भी महत्व त्याग को ही दिया गया है। अव्रती, गृहस्थ ही साधारण कोटि है। अणुव्रती ही गृहस्थ जीवन का वैशिष्ठय है। व्रत ग्रहण से ही त्याग मार्ग आरम्भ होता है, वैसे वस्तुओ की अप्राप्ति में या अनिच्छा पूर्वक भी त्याग होता है। वैसे वस्तुओ की अप्राप्ति में या अनिच्छापूर्वक भी त्याग होता है। पर वह व्रत नही है। व्रत को आंशिक रूप में धारण करने वाले देश विरति श्रमणोपासक या श्रावक कहलाते है और व्रतो को पूर्ण रूप से धारण करने वाले 'महाव्रती' होते है। इनका आशिक त्याग ही देश विरति या अणुव्रत है।

भगवान महावीर ने गृहस्थावस्था में भी त्याग को अपना लिया था। निश्चयानुसार अपने माता-पिता के स्वर्गवास के अनन्तर उन्होने जब सन्यास ग्रहण की भावना व्यक्त की तो उनके बडे भाई नन्दी वर्धन ने उन्हे रोका। वे उनके अनुरोध से दो वर्ष ओर घर मे रहे पर अनासक्त साधु की तरह, पिछले एक वर्ष तो उन्होंने प्रतिदिन दान दिया जिससे साम्वत्सरिक दान कहा जाता है, दो वर्ष पूरे होते ही तीस वर्ष की पूर्ण यौवनावस्था मे भगवान महावीर ने अणगार धर्म का स्वीकार किया और निग्रन्थ बने। कुटुम्ब, परिवार, वस्त्रा भूषण, धन, जन, भूमि आदि समस्त बाह्य पदार्थों एवं देहासक्ति आदि अभ्यन्तर परिग्रह के त्याग को स्वीकार किया। उनके श्रमण होने का सर्वप्रथम प्रतिज्ञा वाक्य यह है "करेमि सामाइयं, सव्वं सावज्ज पच्चक्खामि" अर्थात् उन्होने सम-भाव का स्वीकार स्वयं सर्व सावध पाप कर्मों का त्याग करने की प्रतिज्ञा ली। पॉच इन्द्रियो के विषय भोग सावध-पाप कार्य होने से एवं धन, परिवार शरीर की ममता सावध पाप होने से महावीर निर्ग्रन्थ बने। उनका परित्याग बहुत ही विलक्षण एवं उच्च कोटि का था। श्रमण होने के बाद उन्होने कभी भी अपने परिवार की सुधि नही ली, राजभोगो की ओर कभी मुडकर नही, देखा अर्थात् उनकी कभी इच्छा तक नही की। जन्मभूमि एवं भाई, पुत्री आदि स्वजन परिजनो का तनिक भी मोह नही रक्खा, परिग्रह का त्याग इतना उच्चकोटि का किया कि शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक वस्त्रादि का भी सर्वथा परित्याग करके वे पूर्ण दिगम्बर बन गये इतना ही नही, उन्होने अन्न पान आदि आहार को त्याग कर उग्र तप को अपनाया। साधनावस्था के १२॥ वर्षों मे पूरे वर्ष भर (३६० दिन भी) उन्होंने आहार ग्रहण नही किया, शीत-ताप आदि प्राकृतिक शारीरिक कष्टो को सहन किया साथ ही देव मनुष्य, तिर्यंच के दिये हुये कठोर एवं मरणान्तिक कष्टो को भी समभाव से सहा। यह उनके देहा-शक्ति परित्याग की सर्वोच्च स्थिति थी। इस प्रकार उन्होने मोह ममत्व का सर्वथा त्याग कर महान-त्यागी या त्यागवीर का आदर्श उपस्थित किया। वास्तव

मे गुणो का उत्कर्ष अवगुणो के त्याग के विना सम्भव नही। इसी लिये धर्म के दो रूप माने गये हैं—विधि और निषेध, अमुक काम करना चाहिये, इस विधान के साथ उससे विरोधी अमुक काम नही करना चाहिये ऐसा निषेध रूप धर्म (शिक्षा) का सम्वन्ध जुडा हुआ है। अर्थात् विधि के साथ निषेध का घनिष्ठ सम्वन्ध जुडा हुआ है। जैन धर्म में तो निषेध का विधि से भी अधिक महत्व दिया गया है। जैसे हिंसा के त्याग रूप धर्म का नाम ही अहिंसा है। इसी तरह असत्य, चोरी, मैथुन, परिग्रह के त्याग की प्रतिज्ञा भी हिंसा, मृषा अदत्ता दान, मैथुन परिग्रह विरामण आदि शब्दो द्वारा की जाती है। "विरमण" अर्थात् विराम लेना—त्यागना, पाप कार्यो से विरत होना ही है।

हेय, ज्ञेय, उपादेय इस त्रिपुटि रूप विवेक ज्ञान में त्यागने के योग्य पापो के त्याग का विधान 'हेय' शब्द में सूचित है, मन की चंचलता त्याग विना ध्यान नही होता। ध्यान की साधना करने वाले को वोलना छोड कर मौन रहना पडता है एव पद्मासन न अन्य आसनादि द्वारा काया की अस्थिरता का त्याग जरूरी होता है। जैन धर्म में मन, वचन, काया की गुप्ति का विधान है उसका तात्पर्य यही है कि इन योगो को अपने वश मे किया जाय, उन्हे बुरे कार्यो से हटाया जाय, सामयिक करना इसी विधि वाक्य के साथ ही विशेष सच्चे सर्व सावध योगो के प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा की जाती है। आवश्यकों में प्रत्याख्यान तो 'त्याग' का ही जैन पारिभाषिक पर्यायवाची शब्द है, वैसे कायोत्सर्ग में भी देहाध्यान के त्याग का भाव ही प्रधान है। प्रतिक्रमण का अर्थ है पाप स्थानो से पीछे मुडना उससे भी अट्ठारह पाप स्थानो के त्याग ही भाव स्पष्ट है। १० श्रमण धर्मो में क्षमा आदि धर्म है। उनमें भी क्रोध का त्याग क्षमा, माया का त्याग-आजर्व-सरलता, अभिमान का त्याग-सन्तोष, परिग्रह का त्याग रूप-अकिंचन धर्म है और त्याग को स्वतन्त्र धर्म भी माना है। इस प्रकार दोषो या पापो का त्याग ही धर्म है। असत् अकुशल कर्मो को छोडना और सत्वे कुशल कर्मों का करना ही तो धर्म है। मोक्ष मार्गत्रयमें मिथ्यात्व का त्याग ही सम्यकत्व हैं। इच्छाओ का निरोध त्याग तप है पौद्गलिक सग के निवारण से ही आत्म स्वरूप की उपलब्धि होती है। वि॰ ो का त्याग ही स्वभाव रमणता है। स्वार्थ का त्याग किये विना परमार्थ नही सधता, कर्मो का त्याग ही तो मुक्ति है। आठ कमो का नाश होने पर ही तो मुक्ति है, आठ कर्मों के नाश होने पर ही आत्मिक गुणो का पूर्ण प्रगटीकरण होता है। भारतीय साधना प्रणाली में सत् प्रवृति और निवृति इन दोनो को धर्म की संज्ञा दी गई है। जैन धर्मो सत्प्रवृति से कार्य ले इन दोनो को धर्म की संज्ञा दी गई है। जैन धर्म तो निवृति प्रधान धर्म माना जाता है, . ात उसमें तो त्याग ही प्रधान है।

भारतीय संस्कृति में त्याग को आदरणीय एवं महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वडे से वडे भोगी राजा, महाराजा, चक्रवर्ती तक एक अंकिचन-सन्त महात्मा के चरणो झुकते रहे है। भोगियो का कोई नाम भी नही लेता, जवकि त्यागियो का नित्य स्मरण व जाप किया जाता है। जो व्यक्ति अपने ही स्वार्थ या भोगो में मस्त रहता है उसे कोई भी श्रद्धा से नही देखता। श्रद्धा भाजन वही वनता है जो दूसरे के भले के लिये अपने स्वार्थ का परित्याग करें। त्याग, दोषो का होता है, गुणो का नही। जितने अशो मे दुर्गुण, दुर्व्यसन असत् अंग व असत् प्रसंगो का त्याग किया जाएगा, उतना ही गुणो का विकास होगा। इस प्रकार भगवान महावीर जैसे आदर्श त्यागी से हमे त्याग की महान शिक्षा ग्रहण कर अपने जीवन को धन्य वनाना चाहिये। पर ये ध्यान रहे कि हमारा त्याग दिखाऊ न हो, किसी दवाव से न हो, अतः वाहर की वस्तुओ को त्याग देने पर भी यदि अन्तर मे उनकी इच्छा वनी रहती है तो वह वास्तव में त्याग नही, त्याग और वैराग्य का घनिष्ठ सम्वन्ध है। वैराग्य में पुनः शिथिलता आना सम्भव है। भगवान महावीर की स्मृति रूप जयन्ती मनाते हुए हम त्याग धर्म को अधिकाधिक अपनावे यही जयन्ती मनाने की सार्थकता है।

—※—

साम्यवाद, समाजवाद एवं अपरिग्रहवाद

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल (जयपुर)

विश्व के सभी राष्ट्र आज के युग में किसी-न-किसी वाद के आधार पर अपने-अपने राज्य की नीति निर्धारण करते है । अमेरिका, ब्रिटेन एवं फ्रांस जेसे राष्ट्र अपने को पूँजीवाद राष्ट्र कहते है । रूस और चीन ने अपने को साम्यवादी राष्ट्रों की पंक्ति मे खडा किया है तथा भारत जैसे देश ने अपने को समाजवादी राष्ट्र घोषित किया है। इन तीनो ही प्रणालियों में जनता की भलाई एवं लोककल्याणकारी राज्य की परिकल्पना की जाती है । लेकिन पूँजीवाद में जहाँ पूँजी की अनियन्त्रित संचय, उपभोग एव वितरण है वहाँ साम्यवाद एवं समाजवादी व्यवस्था में पूंजी पर एकाधिकार की समाप्ति तथा उसके उपभोग एवं वितरण पर अंकुश है । पूँजीवाद मे सम्पत्ति का खुला प्रदर्शन है । धनी, निर्धन एवं वर्गभेद की खुली छूट है वहाँ साम्यवाद एवं समाजवाद मे एक वर्ग रचना की परिकल्पना है । लेकिन इन सवसे भिन्न एक और वाद है जो अपरिग्रहवाद के नाम से जाना जाता है जिसमें नैतिकता के आधार पर परिग्रह की सीमा का निर्धारण होता है जिससे दूसरो को भी अवशिष्ट संपत्ति का लाभ मिल सके ।

पूँजीवाद राष्ट्र भी अपने आपको समाजवादी राष्ट्र घोषित करते है क्योकि पूँजीवाद का उद्देश्य भी समाज के सभी वर्गों को विकास के उचित अवसर प्रदान करना है । समाजवाद एक आधुनिक विचारधारा है जिसका उद्देश्य आर्थिक जीवन को नियमन द्वारा समाज में फैली हुई व्यक्तिगत असमानताओ को दूर करना है । समाजवाद उन प्रवृत्तियो का समर्थक है जो सार्वजनिक कल्याण पर जोर देती है तथा उसकी मान्यता है कि राष्ट्र को पुलिस राज्य न होकर लोककल्याणकारी वनाने का सकल्प होना चाहिए किन्तु साम्यवाद वर्गहीन समाज का निर्माण करने का उद्देश्य प्रस्तुत करता है जिसमे ऊँच नीच, धनी निर्धन का कोई भेद नही तथा जाति धर्म, रंग एवं रष्ट्रीयता को कोई स्थान नही । अपरिग्रहवाद की परिकल्पना में ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसमें राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओ पर नियन्त्रण करे तथा आवश्यकता से अधिक संग्रह को लोक कल्याण के लिये स्वमेव वितरण कर दे । अपरिग्रहवाद मे दूसरो के प्रति सहानुभूति होती है जिससे प्रेरित होकर वह अपने राष्ट्र एवं समाज के व्यक्यिो के स्तर को उन्नत करने का प्रयास करता है ।

साम्यवाद बनाम अपरिग्रहवाद

अपरिग्रहवाद के सिद्धान्त को पार्श्वनाथ एवं महावीर ने देश को उस समय दिया था जव यहाँ धनी निर्धन, ऊंच नीच, शिक्षित अशिक्षित, ब्राह्मण अब्राह्मण का वर्ग का भेद अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था । जव उन्होने देखा कि एक व्यक्ति के पास तो इतना अधिक संग्रह है कि वह उसके कारण अपने आपको संत्रस्त मानता है किन्तु एक ऐसा वर्ग भी है जिसको दो जून पेट भर खाने को भी नही मिलता । एक व्यक्ति के पास अशर्फियों का भण्डार है, हाथी घोडो की पंक्ति खडी है तथा नौकर चाकर की कोई सीमा नही है तो दूसरी ओर कुछ ऐसे भी व्यक्ति है जिनके पास ये सभी कल्पनामात्र है । महावीर से यह सव नही देखा गया और उन्होंने अपनी देशना में अणुव्रत एवं महाव्रतो के माध्यम से समस्त राष्ट्र मे व्यक्ति के वर्ग भेद मिटाने के लिये परिग्रह, परिमाणव्रत अथवा अपरिग्रह को जीवन मे उतारने की व्यवस्था की ।

साम्यवाद को राष्ट्र मे व्यवहृत करने के लिये क्रान्तिकारी एवं हिसात्मक पद्धति की व्यवस्था है । इसमे गोली, रक्तपात, एवं मारकाट सभी क्षम्य है । शासन एवं समाज सचालन सगीनो की नोक पर होता है। समाजवाद में अधिनियमो के आधार पर समाज में परिवर्तन किया जाता है । वैको का, वीमा व्यवसाय का, एवं

वसो का राष्ट्रीयकरण इसी का एक अंग है। गेहूँ एव चावल के व्यापार एव वितरण का राष्ट्रीयकरण भी समाजवाद की दिशा में पहले सीठी वतायी जाती है। स्वयं इन्दिरा गॉधी ने इन सवको समाजवाद की दिशा में अग्रसर होना वतलाया है। लेकिन अपरिग्रहवाद में अहिंसा की प्रधानता है। वहाँ न संगीनो का भय है और न अधिनियमो की व्यवस्था है किन्तु व्यक्ति स्वयंमेव अपनी आवश्यकताओ को कम से कम करता है। इस व्यवस्था में हृदय का परिवर्तन है तथा अहिंसा प्रेम एवं सहानुभूति की प्रधानता है। साम्यवाद परस्पर में घृणा, इर्ष्या एवं मनमुटाव को जन्म देता है। समाजवाद में अधिनियमो के अधार पर दूसरो की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया जाता है जब कि अपरिग्रहवाद मे मनुष्य स्वयंमेव त्याग की ओर प्रवृत होता है तथा समाज में एक दूसरे के प्रति प्रेम एवं सद्भाव को प्रोत्साहन मिलता है।

साम्यवाद विचारधारा मे व्यक्ति मे सार्वजनिक कल्याण की कोई भावना नही रहती। यद्यपि वहां सभी को विकास के समुचित अवसर प्रदान किये जाते है फिर भी मनुष्य अपनी बुद्धि, प्रतिभा एवं साधनो के आधारपर अपना विकास करता है। इसी तरह समाजवादी व्यवस्था मे भी स्वपर कल्याण की भावना कम होती जाती है। वसो का राष्ट्रीयकरण के पहले निज वसो के मालिको द्वारा स्थान-स्थान पर जलग्रह की व्यवस्था की जाती थी, वृद्धो अपाहिजो एवं असहायो के लिये कल्याणकारी कोष स्थापित थे लेकिन अब उसका कोई प्रश्न नही है क्योकि सभी राष्ट्रीय संपत्ति वन चुकी है। अपरिग्रहवाद मे दया एवं दान का विधान है। त्याग का सर्वोपरी स्थान है तथा मनुष्य में दूसरो के प्रति कल्याण करने की भावना की प्रमुखता है। औषध-दान, ज्ञानदान, अहारदान एवं अभय-दान, सभी का इसमे विद्यमान है। समाजवादी व्यवस्था मे यद्यपि हिसा को कोई स्थान नही है लेकिन कानून के आधार पर दूसरो की सम्पत्ति पर जवरन कब्जा करने का विधान है। देश मे जो आज राष्ट्रीयकरण का जोर है वह सब इन्ही विचारो के कारण है। इस व्यवस्था मे मनुष्य अपने विकास को अन्तिम सीमा तक नही जा सकता। व्यापारी अपने व्यापार को विस्तार करने से डरता है। उद्योगपति वड़े-वडे उद्योग लगाने मे हिचकता है और किसान को उन्मक्त रूप से खेती करने का अवसर नही मिलता। सवको सिमित कर दिया गया है। सीमाएं वॉध दी गयी है और सीमा से अधिक होने पर उसे राष्ट्र की सम्पत्ति घोषित कर दिया जाता है। लेकिन अपरिग्रहवाद में सीमा का वन्धन होने हुए भी उसमें व्यक्ति को अपने विकास का पूर्ण अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त अपरिग्रहवाद में केवल वाध्य मे परिग्रह पर ही अंकुश लगाने की व्यवस्था ही नहीं है किन्तु मनुष्य को अपनी आन्तरिक बुराइयो एवं कमियो से वचने का भी प्रावधान है। वह केवल खेत, मकान, धन, धान्य, वस्त्र, पशुधन, सवारी, सय्या, एवं आसन आदि की आवश्यकताओ पर ही अंकुश लगाने को नही कहता किन्तु, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा रति, अरति, शोक, भय और घृणा जैसी बुराइयो पर भी अंकुश रखने की व्यवस्था करता है। वास्तव में महावीर ने मानव की स्वभाविक कमजोरी पर ध्यान दिया और उसको दूर करने का उपदेश किया। आज देश में जो संस्कृति के स्थान है, पूजा एवं उपासना के स्थान है वे भी हमारी इसी अपरिग्रहवादी विचार धारा के प्रतीक है। साम्यवाद एवं समाजवाद में ऐसी प्रवृतियो के लिए कोई स्थान नही।

इस प्रकार अपरिग्रह वर्तमान युग के लिये सबसे अच्छी रामवाण दवा है जो एक ओर मनुष्य के अपने विकास की पूर्ण स्वतन्त्रता देता है वहाँ दूसरी ओर वह अतिसंग्रह पर अंकुश लगाने की भी प्रेरणा देता है। यह एक ऐसी अहिंसक पद्धति है जिसमें कल्याणकारी समाज की व्यवस्था है। ऊँच-नीच, धनी निर्धन के भेद भाव को भुलाकर मानव मात्र में प्रेम, सद्भावना एवं कल्याणकारी भावना को प्रोत्साहित करता है। यही नही वह मनुष्य की आन्तरिक बुराइयो के सग्रह पर भी रोक लगाता है और इन बुराइयो को जीवन से निकाल कर शुद्ध एव पावन जीवन निर्माण की ओर प्रेरणा देता है क्योकि जव तक मानव जीवन मे इन बुराइयो पर नियन्त्रण नही होगा तव तक जीवन मे सुख एवं शान्ति के साथ ही कल्याणकारी भावना की उत्पत्ति भी नही हो सकेगी।

हिंसा-रत विश्व के लिये भगवान महावीर का अमर सन्देश

राजवैद्य जसवन्त राय जैन, कलकत्ता

समयं गोमय ! मा पमायए

—हे गौतम ! तू क्षण मात्र भी प्रमाद न कर।

भगवान् महावीर की यह अमर वाणी समस्त मानव-जाति के लिये है। आज जब कि हम प्रमत्त है, उन्मत है, युद्ध-रत है हिसा व घृणा से भरे है—उस समय भगवान वर्धमान प्रभू सम्पूर्ण मानव जाति के मानो जागरण का अमर स्वर प्रदान करते हुये कह रहे है—

जागो, उठो, क्षण मात्र भी प्रमाद न करो।

भगवान् महावीर तप, संयम, त्याग व वैराग्य के मूर्तिमान अवतार थे। उन्होंने विपुल वैभव, ऐश्वर्य एवं भोग को ठुकराकर संयम का मार्ग लिया था।

भगवान् महावीर का अवतरन् २५७१ वर्ष पहले वर्तमान विहार प्रांत के क्षत्रिय कुण्ड ग्राम महाराज सिद्धार्थ की महरानी त्रिशला की पवित्र कुक्ष से चैत्र शुक्ला त्रियोदशी को हुआ था। तीस वर्ष की अवस्था में आपने साधु धर्म ग्रहण किया और कठोर तपश्चर्या के परिणाम स्वरूप आपने कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया। भव बन्धन के खुल जाने से महावीर निगण्ठ या निग्रन्थ की उपाधि से विभूषित हुये। राग द्वेष रूपी शत्रुओं पर विजय पाने के कारण आप ही जिन (जैना) है आप ही तीर्थंकर अर्हत् एवं महावीर हैं।

भगवान् महावीर ने मनुष्य जाति को आशा, उत्साह व पौरूष से उद्दीप्त किया। आपने सन्देश दिया कि सभी को मुक्त होने का अधिकार है और सभी अपने पुरूषार्थ से कैवल्य प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् महावीर की सन्देश किसी एक देश के लिये नही, एक जाति के लिये नही, एक वर्ग के लिये नही. एक काल विशेष के लिये नही—यह सन्देश सनातन है, सार्वभौम है, सार्वकालिक है।

"अहिसा" का महान सन्देश ही आज मनुष्य जाति को महाविनाश, महाध्वंस एवं सर्वनाश से बचा सकता है। महावीर का जीवन अहिसा की विराट प्रयोगशाला थी—आपने अहिसा का परम साक्षात्कार कर अपने को अभय बनाया था। अहिसा का आमोघ अस्त्र ही मानव जाति को पाशविक प्रवृतियों से बचा सकता है। संयमहीन जीवन की ओर बढते हुये दुनियाँ के लिये सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र ही एक ऐसा मार्ग है—जहाँ उसकी रक्षा, प्रगति एवं विकास सम्भव है।

उनका भौतिक उपदेश यही था कि स्वयं सत्य रूप बनो और सत्य का साक्षात्कार करो। असत्य से घिरे रहकर सत्य की प्राप्ति असंभव है। दुःख का मूल कामना है—दुःख के महासागर से सन्तरण करने का एक मात्र उपाय है—कामना पर अंकुश लगाना परिग्रह घटाने मे ही सच्चा सुख व सन्तोष है।

आज मनुष्य जाति अनेक राष्ट्रों, दलों, विभिन्न राजनीतिक शिविरों व सग्राम-संघो में वंटी हुई है—रात-दिन परस्पर घृणा वैमनस्य व विरोधो का तूफान उठ रहा है—कोई किसी के दृष्टिकोण को समझाने के लिये तैयार नही—उस समय केवल अनेकान्तवाद ही एक ऐसा उपाय है जो विश्व मैत्री, मानव एकता एवं परस्पर सहानुभूति को जगा सकता है—दुराग्रहों से मनुष्य जाति को मुक्त कर सकता है।

भगवान् महावीर भास्कर है— जिनके प्रकाश के सभी अधिकारी है। भगवान् महावीर अमृत वर्षा मेघ है—जिनकी शीतल ताप हरनेवाली वर्षा पर सभी पीडितो का अधिकार है। महावीर की वाणी शान्त, गंभीर एवं वैराग्य की आभा से आलोकित है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र सभी स्तर पर महावीर की वाणी सारी समस्याओं का समाधान है।

हमारे सामने २५००वॉ निर्वाण शताब्दी का स्वर्णावसर है, इस अवसर पर हम अपना आत्म निरिक्षण करें, अपने को उन्नत बनावें, तभी महावीर की पूजा सार्थक है। विश्व मंगल, विश्व शान्ति के लिये महावीर वाणी का अमर सन्देश पहुँचाने का दायित्व हमारे पर है, यदि हम आज की हिसा व घृणा से भारी दुनियाँ मे महा प्रभु महावीर का शुद्ध, शान्त, निर्विकार विश्व मैत्री, संयम, अपरिग्रह का सन्देश किञ्चित्‌मात्र भी पहुँचा सकें तो यह शताब्दी वर्ष सार्थक होगा।
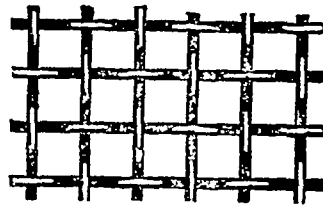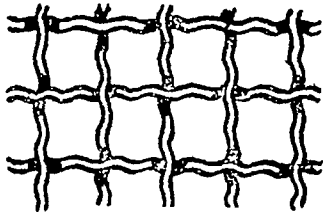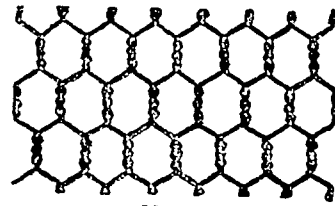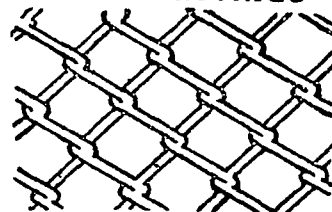
लौकिक जीवन में धर्म की प्रतिक्रिया

लेखक—प्रकाश हितैषी शास्त्री दिल्ली

यदि प्राणी धर्म पथ पर चलने लग जाय तो उसका जीवन अपूर्व सुख शांति मय बन जायगा। क्योंकि धर्म के सिद्धान्त लौकिक और पारलौकिक जीवन को सुखी बनाने के लिये है किन्तु अज्ञानी मानवो ने यह मान रहा है कि यदि धर्म सिद्धान्त पर जीव चलने लगे तो भूखो मर जायगा। बल्कि देखा यह जाता है जो अधर्म का मार्ग अपनाते हैं वे निरन्तर चिन्तातुर रहकर दुखी बने रहते है।

जैनधर्म में अध्यात्म की प्रधानता है। यदि इस अध्यात्मवाद को प्राणी समझ ले तो कभी भी किसी से वैर भाव नही कर सकता है। क्योकि अध्यात्मवाद बतलाता है कि सभी द्रव्य स्वतन्त्र है कोई भी द्रव्य किसी अन्य-द्रव्य का साधक बाधक नही हैं। सभी प्राणी अपनी करनी का फल भोगते है। कोई भी किसी को सुखी-दुखी नही कर सकता है। यदि इस सिद्धान्त को स्वीकार कर ले तो जीव किसी दूसरे से राग द्वेष क्यो करेगा? क्योकि जो भी अनुकूल के प्रतिकूल संयोग हो रहे है वे सब अपनी ही करनी का फल है, उसमें जो सामने वाला निमित्त दिख रहा है वह तो मात्र बाह्य निमित्त है। जब हमारे पुण्य पाप का उदय आता है, तब वह निमित्त बन जाता है। यदि कोई भी पदार्थ प्रतिकूल हो गया है तो वह पाप के निमित्त से हुआ है और अनुकूल हुआ है तो पुण्य फल के निमित्त से हुआ है। इसलिये आचार्य कहते है कि यदि अपकार करने वाले पर यदि क्रोध करते हो तो सबसे बड़ा अपराध करने वाला तुम्हारा विकारी भाव है। उस पर क्रोध करो, मारते हो तो उस विकारी भाव को मारो।

धर्म का दूसरा सिद्धान्त अहिंसा है—उसमे निश्चय अहिंसा का सम्बन्ध अध्यात्म से है। अर्थात् राग द्वेष का न होना अहिंसा है। और राग द्वेष का होना हिंसा है। जब जीव अपने शुद्ध स्वभाव की पहचान कर उस ओर झुकता है, उसमें रुकता है तब राग द्वेष अपने आप नष्ट होने लगते है। इसी को राग द्वेष का अभाव कहा जाता है।

एक संस्कृत कवि ने कहा है—जो आत्मा में परमात्मा को देखता है तथा परमात्मा मे आत्मा को देखता है, वही सच्चा अहिंसक है। क्योकि जो प्रत्येक आत्मा मे कारण परमात्मा के दर्शन करेगा वह किसी जीव को कैसे सता सकता है? धर्म सिद्धान्त के अनुसार एक छोटे-सा छोटा जीव भी परमात्मा होने की शक्ति रखता है। इसलिये एक परमात्मा को पूज्य मानकर उसकी पूजा करे और दूसरे भावी परमात्मा का तिरस्कार करे तो यह परमात्मा की पूजा कहाँ हुई यह तो परमात्मा का मखौल हुआ।

इसीलिये आचार्यश्री समन्त भद्र ने जीवो को सर्वोदय का उपदेश दिया है। उन्होने कहा है आपका धर्म सर्वोदय है, जिसमे सबको समान विकास का अवसर प्राप्त है। सभी प्राणी अपना-अपना आत्मा से परमात्मा बन सकते है। सर्वोदयवादी मे स्वभावतः सर्व धर्म सम-भाव, सर्व भाव सम भाव होता है। वह कभी किसी का विरोध नही करता है। वह सोचता है—

जग की तन्त्री बजने दे तू कभी न उसको
तुझे पराई क्या पडी

एक अहिंसक प्राणी परम सहिष्णु होता है। जहाँ देश धर्म की रक्षा करने को युद्ध भी कर सकता है। देश धर्म के ऊपर मर मिट सकता है किन्तु वह घृणा किसी से नही करता है। युद्ध तो अन्याय मिटाने के लिये है। जैसे रामचन्द्रजी ने अन्याय को मिटाने के लिये रावण पर विजय प्राप्त की किन्तु लंका का राज्य जीत कर भी उसके भाई विभीषण को सौप दिया। अहिसक में इसीलिये सत्वेषु में भी जीव मात्र मे मित्रता की भावना होती है। वह पाप से घृणा अवश्य करता है किन्तु पापी से भी घृणा नहीं करता है। क्योंकि पापी जीव तो पहले ही भूला हुआ है अतः वह तो दया का ही पात्र है।

अहिंसक जीव के सत्य अचौर्या ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत नियम से होते ही हैं। अन्यथा अहिसा व्रत पल ही नही सकता। और यह नियम है कि जिस के अहिंसादि व्रत होगे उस पर सरकार की कानून की कोई भी धारा नही लगती है। अतः वह अपना जीवन सानन्द व्यतीत करता है।

अहिंसक प्राणी अपने जीवन मे सह अस्तित्व और अनाक्रमण का सिद्धान्त अपनाता है। सबके साथ मिल कर रहता है किन्तु किसी भी परद्रव्य पर आक्रमण नही करता। सबको अपने २ अस्तित्व मे रहने का अवसर देता है। उसमें सहज स्वभाव जीव मात्र में मैत्री, गुणियो पर प्रमोद भाव, दुखी जीवो पर करुणा भाव और धर्म से या अपने से विरोधी जीवो पर माध्यस्थ भाव होता है।

अहिंसक सबकी बात सुनता है किन्तु अपनी अनेकांत बुद्धि से उसका सही अर्थ लगा कर अपना प्रयोजन साधता रहता है। व्यर्थ के वादविवाद में अपने मूल्यवान जीवन को नष्ट नही करता है।

कोई धर्म का मार्ग प्रेम से पूछता है तो उसे अपनी सुधा वाणी से उसके हृदय को सन्तुष्ट करता है। यदि कोई उसकी बात नही मानता है तो मध्यस्थ रहता है। वह किसी के भी बिगाड सुधार का ठेकेदार नही है। अन्य जीव धर्म मार्ग पर लग कर सुखी बने, मात्र यह भावना ही कर सकता है। बिगाड सुधार या सुख दुख तो जीव अपने परिणामो पर निर्भर है।

देखा जाता है कि किसी का बिगाड करते हुए उसका भला हो जाता है और बुरा करते हुए भी उसका भला हो जाता है। जैन इतिहास मे ऐसे अनेक उदाहरण भरे पडे है। ज्ञानी धर्मात्मा जीव लौकिक जीवन मे भी परम शान्त गम्भीर और सम दृष्टि होता ही है किन्तु इसके फलस्वरूप भाविरूप भी उसका उज्ज्वल होता है। उसकी हमेशा स्वाधीनता दृष्टि रहती है। वह परम स्वावलम्बी होता है। कभी भी वह परमुखा-पेक्षी नही बनता है। वह मानता है कि जब हम अपने पुरुषार्थ से मुक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं, तो जगत के दूसरे कार्यों में भी क्यो पराधीन वृत्ति अपनाये। अतः एक ओर जहाँ उसे समृद्धि पर रच मात्र भी अभिमान नही होता है, वहाँ वह कभी भी अपने आत्म-गौरव को विस्मृत नही करता है। दीनता और हीनता उससे कोसो दूर भाग जाती है। वह सम्पत्ति मे इतराता नही और विपत्ति में कभी घबराता नही। ये दोनो अवस्था उसकी अपनी वस्तु नहीं है। मात्र उसके ज्ञान के क्षेत्र हैं। अतः वह लौकिक जीवन में भी अपूर्व सुख शान्ति से रहता है।

—※❀※—

"TRI-RATNA"

Dr. ROMA CHAUDHURI, *Vice-Chancellor,*

Rabindra Bharati University, Calcutta.

What is end of Life ? This, after all, is the most primary, most urgent, most fundamental question of our lives , and, as natural, various answers have been given by different thinkers, different philosophers, different theologicians, all over the world, all throughout the ages But Indian thinkers, Indian philosophers, Indian theologicians have always a ready answer, an incontrovertible answer to it—viz , Moksa or Salvation "Dharma-Artha-Kama-Moksa"—these are ordinarily taken to be the "Caturvarga" or "Four-fold Aims" of human life, viz "Religion ; Wealth : Worldly Gain : Salvation". But staunchly rejecting all—even Religion, generally supposed to be the main cause of bringing down the Kingdom of God on earth—Indian Satya-drasta-Risis or Truth-seeing Truth-manifesting saints and sages and seers of India, have fixed on one thing only as the summum-bonum, as the supreme, or, rather the only end of life—viz, as pointed out above— Moksa or Salvation.

And, simultaneously, we come to be confronted with a two-fold equally fundamental question : viz, what exactly is this state of Moksa, Siddhi or Salvation, the Supreme Goal ? Again, what is the means or Sadhanas to this Supreme Goal ?

Here, Sri Mahavira of immortal fame, one of the greatest saviours of Mankind, the world has ever produced, has given us totally new conceptions regarding both the end and the means, Moksa or Siddhi and its Sadhanas or ways or paths to the same. This is his world-famous ' *Doctrine of Tri-Ratna*" or the Doctrine of Three-fold Gems. "Tri-Ratna", "Three-fold Gems" : —what an exhilarating, exalting, exquisite Name ! When we are born here on earth, where "Sarvam Duhkham Duhkham", "Sarvam Ksanikam Ksanikam", "Sarvam Sunayam Sunayam"—everything is full of sins and sorrows, everything is transitory. non-permanent in nature, everything is void, with no real worth or basis—we are, naturally, destitute, desolate, degraded, the poorest of the poor, the weakest of the weak, the sorriest of the sorry. But then, Lord Mahavira our great Saviour and Path-Director, appears before us with three great and grand and glorious boons for us all, in the form of three priceless "Gems", which in a moment, make us the richest of the rich, the strongest of the strong, the happiest of the happy— beggars, as we were, faltering and lagging behind, crouching and weeping in a corner, with none to help and encourage us at all—we are, in a minute, transformed into all-conquering heroes, sovereign kings, proceeding towards our great goal of life in firm, unfaltering, bold steps, with a smile on our lips and a song in our hearts, with sweetest hope and deepest joy, with coolest courage and clearest conviction, with firmest determination and surest ability. And, who works out this great change in us ? Our most reverential, most loved, most gracious, most merciful Lord Mahavira, by his

supreme and sublime Jaina Doctrine, a Doctrine for conquerors, conquerors of *Ajnana* or Ignorance, conquerors of *Jadatva* or materiality, conquerors of *Duhkha* or sorrows

Now what are these three wonderful "Gems" ? These are Gems of "Samyak-Darsana[2]" or Right-Faith ; "Samyak-Jnana" or Right Knowledge , "Samyak-Caritra" or Right Conduct.

"Samyak-darsana" or Right Faith is the first beginning of knowledge ; for without such a kind of initial faith reverence (Sraddha), none can make any real progress in the difficult path of knowledge The first thing that we have to get rid of here, is an attitude of utter scepticism or disbelief towards any and everything great or good or noble This kind of bombastic pride helps none , on the contrary, isolates and alienates the over-confident, over-self-relying, over-satisfied person from the rest, leaving him to his fate, with none to help and lead him at all As we are human beings, mortal beings, feeble beings, fallible beings, it is but normal and natural that we should need guides and helpers, in the beginning to lead us aright in the thorny, pebbly, crooked, cruel Path of Life. And Right Faith stands for this and this much alone. As a matter of fact, it is not a kind of blind belief or dogmatic clinging to some unproved and unreasonable and unjustifiable belief But it is only faith in a Truth with which the seeker after Truth has some preliminary kind of acquaintance and thinks it to be one having at least some chance of being finally true Otherwise, he has no impetus for any study at all. Thus, starting with a partial faith, the beginner studies further, and if he finds that the Jaina teachings are reasonable, his faith becomes stronger and stronger. As a matter of fact, the more he studies Jaina principles, the more does his faith increase.

Then, secondly, he attains "Right Knowledge", or knowledge of the fundamentals of Jainism—viz, that of the nature of Dravyas or Substances of various kinds, of the Self and the Non-Self etc ; the salvation of the self, the means thereto and the like.

Thirdly, he should have "Samyak Caritra" or "Right Conduct" For, it goes without saying that mere theoretical knowledge is useless—theory must end in practice, knowledge in action. Or, our whole lives must be reformed and revolutionised in the golden light of the knowledge we have gained—our every thought, every feeling, every desire must be uplifted, upgraded, purified and perfected in this way—to make us "Jinas" or "Conquerors" in the most real, most correct, most lasting sense of the term.

This kind of "Right Conduct" consists of "Panca-Mahavratas" or "Five-fold Great Vows", viz, Ahimsa-Satyam-Asteyam-Brahmacaryam-Aparigraha" : Non-violence—Truth—Non-stealing—Self-control—Non-attachment.

"*Ahimsa*" or Non-violence means respect for Life, in any form whatsoever, or not injuring or hunting anyone at all. According to the Jaina view, the entire world is a living one, some kind of life or consciousness being present in any and everything on earth. So, the great maxim of the Jainas is "Ahimsa Paramo Dharma", "Non-violence is Supreme Virtue' —and this vow must be practised for all—human beings, lower animals, beasts and birds and worms and gnats, even material objects.

"*Satyam*"—or Truth-speaking means speaking the Trutn under all circumstances, whatsoever, even at the cost of one's life. At the same it means refraining from all kinds

of hard, cruel, frivolous, malicious, garrulous, villifying talk—for—these, too, may hurt our fellow-beings not a little , as a matter of fact, much more than mere physical violence

"Asteyam"—or Non-stealing means respect for the properties of others ; and it is a corollary of the first and fundamental maxim of "Ahimsa" For if you respect life, you have to respect property also on which earthly life invariably depends.

"Brahmacaryam" or Self-control is an essential pre-requisite of any kind of higher, *spiritual life* For, as well-known, we have dual *personalities, so to speak—with a higher* spiritual side and a lower physical life, and here, the higher must control the lower, the spiritual the physical Otherwise, no stepping into the Path to Progress, Path to Fulfilment, Path to Salvation will be possible at all Hence, we have to refrain from all sorts of Self-indulgence, external or internal, subtle or gross, mundane or extra-mundane, direct or indirect.

Lastly, ,'*Aparigraha*" or Non-attachment This is a wider form of the above , and is as such, also an essential condition of any kind of spiritual striving worth the name

The above may seem to be well-known, common forms of moral discipline , yet, as we all know, these are very difficult ones , and if practised properly, may easily bring about Salvation for all. After all, for ordinary persons, like us, such so-called small things count much—for, what more is there in common lives like ours ? As we are ordinary persons, our salvation, too, should be attainable through ordinary means , and it goes to the great credit of the great Teacher Mahavira and others that they, in their infinite glory and grandeur, did not—never for a single moment—ignore or look down upon us common people ; on the contrary, came to our levels lovingly and kindly, stretching out their gracious hands for our help, for lifting us up But they did not, in their infinite wisdom, impose impossible conditions on us, or, compel us to follow Paths, altogether beyond our comprehension and ability Rather, they set up before us something suited to us , and most encouragingly assured us that this Path of ordinary ethical disciplines, too, can take us to the coveted goal of Salvation. To, Jainism is a Universal Philosophy—not a Philosophy of mere high speculations, profound thinking, hair-splitting argumentations,—but a Philosophy of correct behaviour, pure action, proper endeavours. This is within the reach of all—high knowledge is not, but right action is It is also a Universal Religion—not a Religion of God, not a Religion of Ritualism, not a Religion of mere empty forms and codes and conventions—but a living, loving Religion of Humanism, involving Love of Man, Service of Man, Sacrifice for Man

Our gratefulness to Lord Madavira knows no bounds for this, simply for this His was a System for the masses, for the man in the street, for the common people, for ordinary individuals , and so it is a very modern system, aiming at awakening for masses, equal rights and privileges for all, and finally, at "One World"—where there will no distinctions whatsoever between man and man on grounds of castes and creeds and status and *position at all, but all will be taken to be absolutely equal, with equal rights, equal* opportunities, equal dignity, equal honour, equal status

Our salutation to Lord Mahavira, who so many years ago, envisaged and actualised such a lofty World-Ideal with so such ease and perfection, heralding a new golden dawn of Visva-Priti—Visva-Maitri— Visva-Santi—Visva-Seva—Visva-Tyaga Universal-Love— Universal-Fraternity— Universal-Peace— Universal-Service— Universal-Sacrifice May we all follow his noble foot-steps , and fructify his eternal message for the benefit and uplift of all,

GLIMPSES OF JAINOLOGY

(Dr RAM CHANDRA ADHIKARI)

1. The term "Jainology" is not very familiar to most people. It includes within its purview Jaina religion and philosophy , art and architecture specific in character , buico-graphy by Jaina samants ; contribution to various sciences like medicine, botany, zoology etc, some of them have been handed down from hoary antiquity, while many are compiled after the date of the last pathfinder Bhagwan Mahavira Swami (an older contemporary of gautama Buddha). Certainly he is more known than the pathfinder in the world who preceded him but he is not the founder of the extensive philosophy and religion of the Jainas. Foreign scholars, curiously enough, have written-Jainism is a branch of Buddhism The earliest Tirthankara is mentioned in the Rigveda, regarded as the most ancient treatise in India.

2. The twenty two Tirthankaras are not regarded as historical personalities History is not constant always and so-called historical facts are not necessary mathematical truths. Jainism has a very long history, the predecessors of Bhagwan Mahavira Swami transmitted down the tenets successively through centuries, possibly millenia Sri Aurobindo once wrote "that Jesuschrist existed is not proved beyond doubt". The older pathfinders are 'bridge personalities" Linking the past with present

3. History of a religion or philosophy is not so important as their influence on the thoughts of people that the religion of the Shramanas (as distinguished from Vedicexpo-nents) spread for and wide in the south and West even in Sri Lanka is solid truth of observation.

4. Bhagwan Mahavira demonstrated the way of life to be followed by his example as well as precepts. Man is the highest of creation and the level of humanity is reached in the process of evolution. Possessed of an eternal unperishable soul, man is capable of reaching the state of bliss and be atitude here or hereafter by personal individual endeavour, independent of any supermundane agency or heavenly grace Men differ from one another because their souls are polluted with dirt of their own karma-action in life, good or bad according to ethical standard. Life span, birth in a particular environ misery or happiness-all are the resultant of his personal karma Naturally, many births have to be recognised to reach the goal of bliss, not to come down to the world full of misery and evil.

5. Thus Jainism is not a sectarian religion nor limited to any particular region or race There is evidence of the fact that Bengal was influenced by Lord Mahavira The city of Bardhaman (anglicised into Burdwan) was a place where he preached Archaeological finds have shown relics of Jainism in the Eastern parts of Bengal.

6 The master taught us, there are souls everywhere but polluted by karma which needs be purged souls are discrete but similar in all characteristics, capable of rising eminence or degradation So the soul of another creature are not be hated or ignored Toleration is the watchword of the teaching. Tolerance of others viewpoints, sins and crimes naturally endangers humility and charity We do not like to be hated, molested so we should not think of others to be low or inferior

7 This is the real significance of Ahimsa in mind speech and body. If one follows that all throughout his life, he banishes ego-hood and his example will inspire all members of the society, community or a nation

8. Right vision, right knowledge and right conduct are difficult to obtain quickly All our views are tainted with subjective personal peculiarities To reach perfection is the Sumum Bonum in earthly life, when there is no bar in knowing everything and all Otherwise, egoism will lead us astray, cloud our vision, Hatred and enmity will prevail in society

9 There have been attempts to stabilise equality amongst men in different times and fratenrity has been an oft quoted term But an unperfect creature can not rectify the ills of society

10 This is the lesson we have learnt from the master, mere precepts will not go far "Iness" & "Myness" have got to be obliterated to make the earth clean, pure and perfect. We make mistakes very often, do wrong to others as well as to ourselves but unless we are humble to confess those and at one for them, the state of affairs will be worse and worse For the fleting pleasures of the earth people have created disasters History is-replete with instances of personal aggrandisement of megalomaniacs But all worldly possessions are short lives, socalled fame and glory sink into oblivion

11 Living examples of the world teachers show the path, We bow down to them

12 They are the heroes in the strict sense of the term Not a conqueror who rules by blood and sweat but all his senses are under his control Lust and anger, malice and arrogance can not allure him. We offer our submission to them

The Spiritual and Ethical Values of Jainism.

Dr. PUSHPA BOTHRA

Jainism as a religious process, has two aspects, the inner and outer. From one point of view, it is a state of belief and feeling, an inward spiritual disposition, and from the other point of view, it gives ground to the ethical values It is not very different from the other developed religious in its aim Spiritual realisation is the aim of Jainism, as well as it accepts the moral ends for the developing spiritual life. Bodily and mental discipline and meditation are necessary for the purification of the self Without perfection of the self, the spiritual realisation is not possible, according to Jainism. Therefore the Tirthankaras have shown the way of life which leads to perfection of the self.

Every self (Jiva), according to the Jainas, is perfection its own nature, but due to ignorance and worldly affairs it becomes imperfect It possesses different kinds of passions and it has to take birth in the world. But gradually, when it gives up all passions or it conquires all the passions, it gains the highest perfection and becomes supreme self *(Jina or arihanta)*. And it reaches above the stage of bondage. The passions are called as enemy of the self, one who kills them is called *arihanta* or one who conquires them is called *Jina.*

But it is very difficult to give up all passions at once. It requires a long practice of mental and bodily discipline and meditation. The Jaina Tirthankaras have shown the way, it is called the path of three jewels.

The three jewels are *samyaka darsana*, *samyaka Jnana*, and *Samyaka CHARITRA* (right faite, right knowledge and right conduct) In other words, the three jewels are the three aspects of the path to perfection These three cannot exist exclusively of each other, but they are the supplementary to one another. In this article I will try to explain the nature and value of *Triratna* of the Jainas, which become helpful to lead a moral life as well as to reach the spiritual.

(1) *Samyaka Darsana*—Generally, it is called as a faith in the principles of Jainism. But from the real point of view or from *niscayadrsti*, *samyaka darsana* means 'a sense or a feeling of the realisation of self. Thus '*samyaks darsana*" means true vision of self. One has the experience of the self itself other than the body. We may compare it with '*Viveka Jnana*' of the Saṁkhya yoga and the Advaita systems of philosophy. Therefore *samyaka darsana* is the first necessary condition in the way to perfection One should know at first, what is self, and what is the relation between self and body. But the realisation of

vow of non violence. This practice of Samiti or carefulness in his activities will make him a good civilised citizen.

The five vows are the basis for the spiritual and ethical practice in Jainism We will try to explain them one by one in the Jaina sense

(A) *Ahimsa or the Vow of non-violence*—The Jaina attitude of *ahimsa* is based on the feeling of kindness and sympathy. All living beings are equal as they all possess consciousness of pleasure and pain Therefore one should be kind to every living being Ahimsa is not only limited to not killing of any living being but also none should be forced to do anything against his wish. One should not commit violence even in thought. Thoughts and ideas must be pure. If one thinks to kill or to give troubles to others, he commits violence in thought it is called *bhavahimsa* Violence in action as well as in thought should be omitted according to Jainism

On the other hand, the Jainas are not narrow minded They have realised that in some cases or in some cases or in some special circumstances one has to comit violence, as for example, in the time of war or inself-defence or for the defence of country, society or religion etc But in all such cases the aim should be 'to save' something, or the aim should be pure The Jainas therefore has divided *himsa* or violence in four types.

(a) *Udyamihimsa or violence in profession*—One should not do any profession which depends on violence or one have to kill some living beings, just as the profession of butcher fisherman, eggman, profession of leather and hear etc *Udyamihimsa should be ommitted in any case*

(b) *Samkalpihimsa or intentional violence—One should not commit violence intentionally.* Samkalpihimsa includes violence for the sake of fun or violence performed under intense passion.

(c) *Aramhhihimsa or unintentional violence*—Inspite of carefulness, we commit violence some times; unintentionally, as in walking, cooking etc A householder cannot save himself for committing this types of violence but oneshould be careful to do his daily routine.

(d) *Virodhihimsa or violence in defensive works*—Violence in defensive works is called *virodhihimsa* Although *Virodhihimsa* is a type of violence, but in some special conditions a householder has to commit it, as for example, in self defence or for the defence of people, country or religion etc But the aim should be 'to save' something, not agreessive. A householder can take part in war in order to save his country

(B) *Satya or the vow of faithfulness*—Truthfulness is not speaking what is only true, but speaking what is true as well as good and pleasant Truthfulness should be used in thought, speech and action Even one should not favour any false argument.

(C) *Asteya or the vow of non-stealing*—Generally, this vow consists in not taking what is not given But abatement of theft receiving stolen property, violating state rules, use of false weights and measures and adulteration etc all should be ommitted.

(D) *Brhmacharya or the vow of self control*—This vow is generally interpreted as

the self is not easy task. One should develop some moral qualities. A right beliver or samyaka dristi must possess the following four essential virtues :—

(a) *Prasama* or calmness

(b) *Samvega* or detaehment.

(c) *Anukampa* or kindness.

(d) *Astikya* or realisation.

One should do practice seriously these virtues in his life. Due to a long practice of these virtues, one can realise the true nature of the self. Only a faith in the existence of self or in the principles of Jainism is not enough. But *samyaka darsana* has its spiritual and........Practical values, these are necessary conditions for one, who wants to know true nature of the self. Calmness, detachment, kindness and self-realisation make the self more pure and perfect. One should practice these virtues in the every field of life.

(2) *Samyaka Jnana*—Right knowledge, does not here mean a knowledge epistemologically right But right knowledge is that which leads to spiritual insight. Right knowledge should help in the realisation of truth. In other words, the knowledge which helps to know the true nature of the self. Such knowledge teaches us what are theessential qualities of the self, how one can get them, what are the causes of bondage, (BANDH), how can one remove ignorance and how one can get perfection. One can acquire right knowledge either from scriptures or from great saints.

(3) *Samyaka Charitra*—As mentioned before, the mental and bodily discipline are necessary for the perfection of the self. The passions can be removed by the practice of moral laws. In other words, moral end helps for the developing spiritual life. Therefore the jains have introduced a way of life, based on some moral laws and this is called *Samyaka Charitra* or right conduct. I will try to explain the important rules of right conduct, these are : the five vows, the three fold path of self discipline and the practice of six kinds of carefulness. The five vows are the vow of *ahimsa* or non violence, the vow of *satya* or truthfulness, the vow of *asteya* or non-stealing, the vow of *Brahmachrya* or self control and the vow of aparigraha or non possession. The three fold path of self discipline are the *manogupti*, *vacanagupti* and *kayagupti* (the discipline of mind, speech and body). And the six kinds or carefulness *(samiti)* are :

(a) *irya samiti* (Carefulness in walking)

(b) bhasa samit (Carefulness in speech).

(c) *esana samiti* (Carefulness in eating),

(d) *dana samiti* (Carefulness in lifting),

(e) *niksepa samiti* (Carefulness in laying down),

(f) *utsarga samiti* (Carefulness in deposing waste) products.

One could do his every day work as carefully as possible to him, that his activities would not be harmful to others, even to a small ant or worm. The practice of *samiti* or the carefulness in his all activities would make his kind and would be helpful to deserve the

that of celibacy. But a householder has advised to consider all women except one's wife as mother, sister or daughter.

(E) *Aparigraha or the vow of non-possession*—A house holder should try to limit his activities for possessions Because parigraha is the cause of all attachments and it is also an obstacle to self realisation

Again, the Jainas have divided the five vows in two grades, the small vows (Anuvrata) and the great vows *(mahavrata)* The small vows are for the householders, these are the partial vows. These are not very strict, because a householder has some responsibilities towards his family. society and country And the great vows are for the monks who have not any attachment towards either the family or society or country Therefore, the vows for the monks are more strict than the householders , as for example, a householder can comit *virodhihimsa* in self defence but a monk cannot commit any kind of violence. He must over power all difficulties due to his high moral and spiritual power

The difference between the *anuvrata* and *mahavrata* lies in quantity not in quality. The fundamental spirit behind the vows is the same We can say that the vows of the householder is the first step towards self discipline, while the *mahavratas* are the final stage of discipline All vows should be observed in thought, speech and action. Otherwise they would not fulfil the aim to reach high moral and spiritual end.

We have gone through a short description of the *triratna* or the threefold path of the Jainas. Right faith, right knowledge and right conduct cannot exist exclusively to each other *Right conduct with right faith and right knowledge only can lead to perfection of the self. Bodily and mental discipline is useless if one follows it blindly Therefore the Jainas assert samyaka darsana and samyakajnana as the necessary conditions for the success of samyaka caritra. In other* words, samyaka darsana and samyaka jmana are the states *of belief and feeling and have their spiritual significance while, samyaka charitra is a ground for moral end All the three have their equal value and the three are the supplementary to each other*

বীর স্তুতি

গণেশ লালওয়ানী

পর্ব্বতে যেমন সুমেরু শ্রেষ্ঠ
বৃক্ষে শাল্মলি বৃক্ষ,
বনে নন্দন বন
জ্ঞানে ও চরিত্রে
তেমনি ভগবান মহাবীর শ্রেষ্ঠ।

ধ্বনিতে যেমন মেঘমন্দ্র শ্রেষ্ঠ,
নক্ষত্র শশাঙ্ক,
সৌরভে চন্দন বাস,
মুনিদের মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীর শ্রেষ্ঠ।

সমুদ্রে যেমন স্বীয়ম্ভু রমণ শ্রেষ্ঠ,
নাগে ধরনেন্দ্র,
রসে ইক্ষুরস,
তপস্বীদের মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীর শ্রেষ্ঠ।

হস্তীতে যেমন ঐরাবত শ্রেষ্ঠ
বনচরে সিংহ, জলে গঙ্গোদক,
পক্ষীতে বেনুদেব গরুড,
নির্বানবাদীদের মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীর শ্রেষ্ঠ।

যোদ্ধায় যেমন বিশ্বসেন শ্রেষ্ঠ,
ফুলে অরবিন্দ,
ক্ষত্রিয়ে দানতবাক্য,
ঋষিদের মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীর শ্রেষ্ঠ

দেবতাব যেমন বৈমানিক শ্রেষ্ঠ,
সভায সুধর্ম সভা,
ধর্মে মোক্ষ ধর্ম,
জ্ঞানীদেব মধ্যে
তেমনি ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

দানে যেমন অভযদান শ্রেষ্ঠ,
সত্যে অনবদ্য বাক্য,
তপস্যায ব্রহ্মচর্য্য,
তেমনি লোকত্তম
ভগবান মহাবীব শ্রেষ্ঠ।

অনুপম ছিল তাঁব ধর্ম।
অনুপম ছিল তাঁব ধ্যান,
সেই ধ্যান
শংখেব চাইতে ও শুক্ল,
চাঁদেব চন্দ্রিকাব চাইতে ও ধবল।

তিনি উত্তম ধ্যানে
ক্ষয কবে ছিলেন কর্ণ বজ,
লাভ কবে ছিলেন পবমা সিদ্ধি,
যাব আদি আছে
কিন্তু অন্ত নেই।

ভগবান মহাবীর ও অনেকান্তবাদ

গণেশ লালওয়ানী

ভগবান মহাবীব তখন সাধনায সিদ্ধিলাভ কবে নানাস্থানে ঘুবে বেড়াচ্ছেন। এমনি একবাব ঘুবতে ঘুবতে তিনি এসে উপস্থিত হলেন বৎস দেশেব বাজধানী কৌশাম্বীতে। তিনি কাকব ঘবে অবস্থান কবতেন না। সাধাবণতঃ নগবেব বাইবে বা চৈত্যে অবস্থান কবতেন। এখানে এসেও তাই চন্দ্রাবতবণ চৈত্যে অবস্থান কবলেন।

এই সময বৎস দেশেব সিংহাসনে ছিলেন বাজা উদযন। উদযনেব কথা সকলেই জানেন। এব সম্বন্ধেই কালিদাস তাঁব মেঘদূতে বলেছেন—উদযন-কথা-কোবিদ্ গ্রামবৃদ্ধাম্? উদযন ও বাসবদত্তাব গল্প নাটকে আখ্যাযিকায নানাস্থানে ছড়িযে বযেছে।

এই উদযনেব মা ছিলেন মৃগাবতী। মৃগাবতী ছিলেন বৈশালী গণতন্ত্রেব নাযক শ্রীমান্ মহাবাজ চেটকেব মেযে। সাংসাবিক সম্পর্কে ভগবান মহাবীব-এব মামাতো বোন। তিনি যখন সংবাদ পেলেন যে মহাবীব কৌশাম্বীতে এসেছেন তখন তিনি উদযনকে সঙ্গে নিযে চন্দ্রাববণ চৈত্যে তাঁব সঙ্গে দেখা কবতে গেলেন। সঙ্গে আবো এলেন উদযনেব পিসী বাজা শতানীকেব মেযে জযন্তী।

মহাবীব ধর্মোপদেশ দিলেন। তাবপব প্রশ্নোত্তব। জযন্তী শ্রমণোপাসিকা ছিলেন। শ্রমণ ধর্মে তাঁব গভীব অনুবাগ ছিল প্রশ্নোত্তবেব সময তিনি তাই ভগবান মহাবীবকে অনেক প্রশ্ন কবলেন। সে সমস্ত প্রশ্নেব একটি ঃ ভগবান্, ঘুমিযে থাকা ভালো না জেগে থাকা?

মহাবীব বললেন, কাৰু ঘুমিযে থাকা ভালো, কাৰু জেগে থাকা।

জযন্তী বললেন, ভগবান, সে কি বকম?

মহাবীব বললেন, যে অধার্মিক, যে অধর্মেব অনুষ্ঠান কবে, অধর্ম যাব প্রিয, তাব ঘুমিযে থাকাই ভালো, তাহলে সে অনেক লোকেব অনিষ্ট কবা হতে বিবত থাকবে এবং এই বিবত থাকাব জন্য তাব পাপ সঞ্চযও কম হবে। কিন্তু যে ধার্মিক, ধর্মানুবাগী, ধর্মই যাব প্রিয তাব জেগে থাকাই ভালো। সে যদি জেগে থাকে তবে সে অনেক লোককে ধর্মে প্রবর্তিত কববে এবং নিজেবও কল্যাণ সাধন কববে। জযন্তী, তাই কাকব ঘুমিযে থাবা ভালো, কাকব জেগে থাকা।

জযন্তী আবাব প্রশ্ন কবলেন, ভগবান্, দুর্বলতা ভালো না সবলতা?

মহাবীব বললেন, কাকব দুর্বলতা ভালো কাকব সবলতা।

ভগবান্ সে কি বকম?

জযন্তী, যে অধার্মিক, যে অধর্ম দ্বাবা জীবিকা অর্জন কবে, তাব দুর্বলতাই ভালো। সে যদি দুর্বল হয তবে অনেকেব দুঃখেব কাবণ হয না। কিন্তু যে ধার্মিক তাব সবল হওবাই ভালো। সে অনেক সৎকাজেব অনুষ্ঠান কবতে পাবে।

জযন্তী আবাব প্রশ্ন কবলেন, ভগবান, উদ্যমী হওযা ভালো না অলস?

মহাবীব বললেন, কাকব উদ্যমী হওযা ভালো, কাকব অলস।

জযন্তী বললেন, সে কি বকম?

মহাবীব বললেন, যে অধার্মিক, যে অধর্মেব আচরণ করে বেড়ায় তাব অলস হওয়াই ভালো। তাতে সে অনেকের সামান্যই ক্ষতি করতে পারবে। কিন্তু যে ধার্মিক, ধর্মানুষ্ঠান করে, তাব উদ্যমী হওয়াই ভালো, কারণ তাতে সে অনেকেব মঙ্গল সাধন করতে পাববে।

এ সমস্ত প্রশ্নোত্তব সামান্যই মনে হতে পাবে, কিন্তু এদের পেছনে যে দৃষ্টিভঙ্গী রয়েছে তা সামান্য নয। সে দৃষ্টিভঙ্গী আপেক্ষিক বা অনেকান্তবাদের। আপেক্ষিকবাদ বা Relativity আজ আমাদেব কাছে নূতন নয কিন্তু আজ হতে ২৫০০ বছর আগে এই দৃষ্টিভঙ্গী নিশ্চযই নূতন ছিল। ভারতীয় মনীষার ক্ষেত্রেও নূতন কারণ আপেক্ষিক দৃষ্টিভঙ্গী একমাত্র জৈন দর্শন ছাড়া আর কোথাও দেখা যায না। এজন্য জৈন দর্শনকে অনেক সময অনেকান্ত দর্শন বলে অভিহিত কবা হয়। আব এই যুগান্তকারী অনেকান্ত দর্শনেব প্রবর্ত্তক ছিলেন ভগবান মহাবীব।

সংক্ষেপে আপেক্ষিকবাদের তাৎপর্য্য হল বিভিন্ন প্রকাব দৃষ্টিকোণ হতে বিচাব বা দেখা। পদার্থ মাত্র যখন অনন্তধর্ম তখন একান্ত্য ব্য নিশ্চযাত্মকরূপে কোন বস্তুর ধর্ম নিরূপণ কববাব চেষ্টা কখনো সত্য হতে পাবে না। তাকে নানা ধর্ম দিযে বিচার কবে দেখতে হয। লোকটি পিতা বলে তাব সম্পূর্ণ পরিচয দেওয়া হয না। পুত্রেব অপেক্ষায সে যেমন পিতা, পিতাব অপেক্ষায সে তেমনি পুত্রও। তাই লোকটিকে যথার্থভাবে জানতে গেলে তার সমস্ত ধর্মকে গ্রহণ কবতে হয।

আমাদেব উপবোক্ত উদাহবণেব ঘুমিযে থাকা ভালো না জেগে থাকা, সবল হওয়া ভালো না দুর্বল, উদ্যমী হওয়া ভালো না অলস—অন্য কেউ হলে নিশ্চযই বলত, জড়ত্ব ভালো নয, দুর্বলতা পাপ, উদ্যমী হওযাই পুরুষার্থ। কিন্তু মহাবীর তা বলেননি। বলেননি তাব কাবণ তাঁব অনেকান্ত দৃষ্টি। জড়ত্ব যেমন দোষ, ক্ষেত্রও সময বিশেষে তা আবাবগুণও। যে দুরাচাব, যে সমাজ বিবোধী, সে সদি ঘুমিযে থাকে তাতে যেমন সামুহিক মঙ্গল, তেমনি তাতে তাব ব্যক্তিগত কল্যাণও। কুম্ভকর্ণ বছবেব পব বছব না ঘুমিযে যদি জেগে থাকতো, তবে সংসাবেব কি হত ভাবতেও ভয কবে! বাবণ যদি উদ্যমী না হতেন তবে সীতা হবণ কবতেন না, লঙ্কাবও বিনাশ হত না।

দুষ্ট লোকেব কোনো যুগেই অভাব নেই। সেদিনও ছিলনা, আজো নেই। তাদেব দিকে চেযে ভগবান মহাবীরেব সেই কথাই মনে পড়ে—এবা যদি ঘুমিযে থাকত বা বলহীন হত বা উদ্যমহীন তাহলে সমাজের যেমন তাতে কল্যাণ ছিল, তেমনি তাদেব নিজেদের ব্যক্তিগত ভাবেও কল্যাণ ছিল।

भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति

के

भूतपूर्व अध्यक्ष एवं संयोजक

	अध्यक्ष	संयोजक	सयुक्त संयोजक
सन् १९६५	श्री मोहनलाल लल्लूचन्द शाह	श्री कमलसिह दुधोडिया	श्री पन्नालाल नाहटा श्री सम्पतकुमार
सन् १९६६	श्री विजय सिह नाहर	श्री पन्नालाल नाहटा	श्री सम्पतकुमार गधैया
सन् १९६७	श्री दीपचन्द काकरिया	श्री पन्नालाल नाहटा	श्री सोहनलाल पारसान
सन् १९६८	श्री विजय सिंह नाहर	श्री पन्नालाल नाहटा	श्री सोहनलाल पारसान श्री पूनमचन्द गीया
सन् १९६९	श्री हनुमानमल बेगानी	श्री पूनमचन्द गीया	श्री अनिल कोठारी श्री हिम्मत सिंह जैन
सन् १९७०	श्री जुगमन्दिर दास जैन	श्री तिलोक चन्द डागा	
सन् १९७१	श्री शीतलप्रसाद जैन	श्री तिलोकचन्द डागा	श्री रिखवदास भंसाली श्री नन्दकिशोर जैन
सन् १९७२	श्री शीतलप्रसाद जैन	श्री कमलकुमार जैन	श्री प्रफुल्ल आर० कोठारी श्री धन्नालाल काला

भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति

संचालक—श्री जैन सभा, ७ शम्भूमल्लिक लेन, कलकत्ता-७

वी० सं० २४९९ की कार्यकारिणी समिति के सदस्य

सभापति

श्री हनुमानमल बेंगानी

उपसभापति

श्री गम्भीरचन्द बोथरा

श्री रिखबचन्द पहाड़िया

श्री केशवलाल जे० खण्डेरिया

श्री विहारीलाल जैन

प्रो० कल्याणमल लोढा

संयोजक

कमल कुमार जैन

संयुक्त संयोजक

श्री अनिलकुमार कोठारी

श्री नन्दकिशोर जैन (सम्पर्क विभाग)

श्री पूनमचन्द घीया

श्री प्रफुल्ल आर० कोठारी

श्री विजयकुमार छाजेड (स्मारिका विभाग)

कोषाध्यक्ष

श्री रिखबदास भसाली

सदस्य

श्री विजय सिंह नाहर

श्री रामकृष्ण सरावगी

श्री परीचन्द बोथरा

श्री मिश्रीलाल जैन

श्री रामचन्द्र सिंघी

श्री नथमल सेठी

श्री जुगमन्दिरदास जैन

श्री दीपचन्द कांकरिया

श्री मदनलाल पाण्डया

श्री गोविन्दलाल सरावगी

श्री कुमारचन्द्र सिंह दुधोड़िया

श्री मोहन भाई झवेरी

श्री हरकचन्द कांकरिया

श्री भंवरमल सिंघी

श्री नवरतनमल सुराना

श्री छगन भाई चूड़ावाला

श्री सीताराम पाटनी

श्री खेमचन्द सेठिया

श्री सूरजमल वच्छावत

श्री दीपचन्द नाहटा

श्री लाभचन्द्र राय सुराना
श्री छोटालाल हरीदास गांधी
श्री जयचन्दलाल वगडा
श्री हरीसिंह श्रीमाल
श्री प्रेमचन्द मोघा
श्री रामस्वरूप जैन
श्री कन्हैयालाल घोडावत
श्री हिम्मत सिंह जैन
श्री छतरसिंह वैद
श्री नागरमल जैन
श्री जयकुमार काला
श्री कांतिलाल श्रीमाल
श्री तिलकचन्द जैन
श्री नन्दलाल जैन
श्री केवलचन्द नाहटा
श्री कल्याणचन्द जैन
श्री केशव भाई शाह
श्री मन्नालाल वरडिया
श्री मोहनलाल वैद
श्री धन्नालाल काला
श्री वाबूलाल लक्ष्मीचन्द शाह
श्री गणेश ललवानी
श्री रसिकलाल सेठ
श्री नरेन्द्र देशाई
श्री पूरणचन्द जैन
श्री मोहनलाल पारसान
श्री प्रभुदयाल डावडीवाला
श्री सन्तोषचन्द वरडिया
श्री ताजमल वोथरा

श्री दिलीप सिंह नाहटा
श्री किशनलाल काला
श्री रमणिकलाल मेघानी
श्री सिद्धराज भण्डारी
श्री महेशचन्द जैन
श्री माणिकचन्द नाहटा
श्री धिरेन्द्र कुमार जैन
श्री राजेन्द्र सिंह लोढा
श्री कैलाशचन्द जैन
श्री प्रद्योत कुमार नाहटा
श्री इन्द्र प्रकाश मेहता
श्री तिलोकचन्द डागा
श्री भंवरलाल सिंघी
श्री श्रेणिक कुमार सिंघी
श्री राजेन्द्र कुमार जैन
श्री झवरलाल वैद
श्री श्रवणकुमार जैन
श्री भरत भाकडा
श्री शांतिलाल वाकलीवाल
श्रीमती सूरज देवी बैंगानी
श्रीमती उदयकुमारी दुधोडिया
श्रीमती शकुन्तला चिंतामणी
श्रीमती सुलेखा जैन
श्री भंवरलाल करनावट
श्री भंवरलाल नाहटा
श्री ओंकारलाल वोहरा
श्री सुगनचन्द पाण्डया
श्री वछराज सेठिया

भगवान महावीर जयन्ती समारोह समिति

वि० सं० २४६६ के सदस्य

श्री हनुमानमल बेंगानी
श्री विजयसिंह नाहर
श्री शीतल प्रसाद जैन
श्री परीचन्द बोथरा
श्री केशवलाल जे० खण्डेरिया
श्री मिश्रीलाल जैन
श्री रामचन्द्र सिंधी
श्री जुगमंदिर दास जैन
श्री गोविन्दलाल सरावगी
श्री मदनलाल पाण्डया
श्री हरकचन्द कांकरिया
श्री नथमल सेठी
प्रो० कल्याणमल लोढ़ा
श्री रिखबचन्द पहाड़िया
श्री मोहनलाल बैद
श्री गम्भीरचन्द बोथरा
श्री मदनलाल काला
श्री कुमारचन्द्र दुधोडिया
श्री नन्दलाल सरावगी
श्री पारसमल कांकरिया
श्री मोहनलाल पारसान
श्री नवरतनलाल सुराना
श्री हिम्मत सिंह जैन
श्री मोहनलाल बांठिया
श्री कमल कुमार जैन
श्री लाभचन्द राय सुराना
श्री हरकचन्द पाण्डया
श्री सूरजमल बच्छावत
श्री भंवरलाल नाहटा

श्री अनिलकुमार कोठारी
श्री छोटालाल हरीदास गाधी
श्री विजयकुमार छाजेड़
श्री दीपचन्द नाहटा (सरदार शहर)
श्री रिखबदास भंसाली
श्री पूममचन्द गीया
श्री नन्दकिशोर जैन
श्री बिहारीलाल जैन
श्री रसिकलाल सेठ
श्री प्रफुल्ल आर० कोठारी
श्री भंवरलाल बेद
श्री किशनलाल काला
श्री भरत भाकडा
श्री समुद्रगुप्त जैन
श्री कांतिलाल श्रीमाल
श्री रामस्वरूप जैन
श्री इन्द्रप्रकाश मेहता
श्री नन्दलाल जैन
श्री प्रद्योतकुमार नाहटा
श्री जयकुमार काला
श्री विरेन्द्रकुमार जैन
श्री बाबूभाई लक्ष्मीचन्द दोसी
श्री ताजमल बोथरा
श्री राजवैद्य जसवंतराय जैन
श्री जगतसिह चोपडा
श्री शांतिलाल बाकलीवाल
श्री जयचन्द लाल वगडा
श्री मानकचन्द नाहटा
श्री श्रवणकुमार जैन

श्री नागरमल जैन
श्री श्रीचन्द रामपुरिया
श्री धर्मचन्द जैन
श्री सुगनचन्द पाण्ड्या
श्री विजयचन्द मोघा
श्री गणेश ललवानी
श्री अवधनारायण जैन
श्री झवरलाल बोथरा
श्री सीताराम पाटनी
श्री भंवरलाल करनावट
श्री तिलकचन्द जैन
श्री राजेन्द्र सकलेचा
श्री चुन्नीलाल भायचन्द शाह
श्री बलदेवराज जैन
श्री भंवरलाल सिंघी
श्री केवलचन्द नाहटा
श्री चन्दनमल भूतोड़िया
श्री मोतीलाल मालू
श्री मानकचन्द जैन
श्री धर्मचन्द राखेचा
श्री बछराज सेठिया
श्री अशोककुमार जैन
श्री कन्हैयालाल मालू
श्री शोभाचन्द सुराना
डा० भूपेन्द्रकुमार कोचर
श्री महेशचन्द जैन
श्री छतरसिंह बैद
श्री अमरचन्द जैन
श्री रमणिकलाल मेघानी
श्री पूरणचन्द जैन
श्री राजेन्द्रकुमार जैन
श्री कन्हैयालाल घोडावत
श्री धन्नालाल काला
श्री प्रेमचन्द चोपड़ा
श्री दिलीपसिंह नाहटा
श्रीमती सूरजदेवी बेगानी
श्रीमती कुसुम कुमारी जैन
श्रीमती सुलेखा जैन
श्रीमती इन्दिरा देवी जैन
श्रीमती मधु भंसाली
श्रीमती उत्तमदेवी मेहता
मती गणपति छाजेड

नोट—उपरोक्त प्रत्येक सदस्य से ११ रु० की सहायता मिली है।
श्री परीचन्द बोथरा से २५१) की विशेष सहायता प्राप्त हुई है।

દિવ્ય દીપ મહાવીર

પુષ્પા શાહ

અલ્હાદ્દક વાયુ વસંતની પહેલા જ આવે છે તેમજ મંગળ
વસંતના વધામણા લઇને અલ્હાદૃક વાયુ વસંતની પહેલા જ આવે છે
તત્વની આગાહી વાતાવરણમા પહેલેથી જ વર્તાવા માડે છે

ચૈત્ર સુદી તેરસનુ મંગલ પ્રભાત એક અદ્વિતિય મંગલનો સંદેશો લઇ, જનતાને ધીમે
ધીમે ઢંઢોળી ચેતનવંતી બનાવી રહ્યુ છે ધીમેથી સમીર સૌના કાનમા કહી રહ્યો છે જે
દુનિયાની ચીરઃકાળની નિદ્રાને પોતાના પ્રબળ પુરૂષાર્થ દ્વારા ક્ષણમાત્રમા વિખેરી નાખવાના છે,
તેવી મહાન વિભૂતીના પૃથ્વીપરના આગમનને વધાવવા સજ્જ બનો

અને રાજમહેલમા નોબતો ગગડી ઉઠી રાજકુમારના જન્મના વધામણાની પ્રજાના
આનંદનો પાર નથી. ઉત્સાહથી પ્રજા રાજમહેલ તરફ ઉમટી રહી છે વીર વર્ધમાનના
જન્મોત્સવમા પોતાની આનંદ ઊર્મિઓ વહાવવા, વર્ધમાનનો જન્મ એકલા મનુષ્યને જ નહિ,
પરંતુ દેવોને પણ આકર્ષી રહ્યો છે

વર્ધમાન શિશુમાંથી ધીમે ધીમે બાળવયના પ્રાગણમા પગલા પાડી રહ્યા બાળવયની
તેઓની નીડરતા, અદ્ભુત સાહસિકતાથી તેના સાથીઓ આશ્ચર્યચકિત બની રહેતા

જીવનના શૈશવને વટાવી યુવાવસ્થામા આતરિક શત્રુઓને જીતવા માયાના ગાઢ
સાંસારિક બંધનોને તોડી વર્ધમાન સાધના માટે નીકળી પડ્યા. કર્મશત્રુઓને પરાજીત
કરવા માટે તેઓએ જે પ્રબળ પુરૂષાર્થ કર્યો, નિરંતર સાડાબાર વર્ષો સુધી માનવ તથા દેવ
સર્જીત અસહ્ય કષ્ટોને લગીરે ખેદની લાગણી વગર સમભાવથી સહન કર્યાં, તેનાથી આશ્ચર્ય
ચકિત દેવોએ તથા જનતા જનાર્દને ફક્ત વીરજ નહિ, પરંતુ મહાવીરનુ બિરૂદ આપ્યુ.
યુગ યુગાતર સુધી એજ નામ અમર રહ્યુ અને રહેશે

"સંભાવામિ યુગે યુગે' ઘણા લોકો માને છે, કે પૃથ્વી ઉપર પાપ જ્યારે ખૂબજ વધી
જાય છે, ત્યારે ભગવાન તેના નિવારણ માટે અવતાર લેય છે આ વાતનુ કેટલે અંશે સમર્થન
થઈ શકે, તે કહી શકાય નહિ. પરંતુ એટલુ તો જરૂર છે, કે પૃથ્વી ક્યારેય સંપૂર્ણ પુણ્યવંતી
બની નથી. જો તેવું થઈ શક્યુ હોત, તો સ્વર્ગ પૃથ્વી ઉપર જ ઊતરી આવ્યું હોત!

હા! પણ મહાપુરૂષોના પ્રબળ પુરૂષાર્થથી અધર્મ અને તેને અંગે વર્ચસ્વ જમાવી
બેઠેલા અંધશ્રદ્ધા અને વહેમોનો જરૂર નાશ થાય છે.

- ભગવાન મહાવીર તે યુગના પ્રખર ક્રાંતિકારી પુરૂષ હતા, જે યુગ વૈદિકધર્મની વ્યાપકતનો અને બ્રાહ્મણોના વર્ચસ્વનો યુગ હતો ધર્મના નામે હોમ, હવનમા પશુઓનો અને કેટલીકવાર માનવીઓનો પણ બલિ ચઢાવાતો રાજાઓ ઉપર પણ બ્રાહ્મણોનુ રાજગુરૂ તરીકે સ પૂર્ણ વર્ચસ્વ હતું તેથી પ્રજા તે અ ધશ્રદ્ધામાથી નીકળી યોગ્યા યોગ્યતાના વિચારની કલ્પના પણ કરી શકતી નહિ એવો હતો એ વૈદિક ધર્મના વ્યાપકપણાનો કાળ

આવા કાળના રચૈતાને કોણ લલકારી શકે ? જે સ પૂર્ણપણે નિસ્વાર્થ છે જેને બાહ્ય, અભ્ય તર કોઈ શત્રુઓ રહ્યા નથી જે પોતાના સ પૂર્ણ જ્ઞાનમા યથાતથ્ય જોઇ રહ્યા છે. તેજ તેવા યુગમા "જીવો અને જીવવાદ્યો" જેવા મહાન સંદેશને લોકો સમક્ષ મૂકવાની હિમત કરી શકે પ્રભુએ કહ્યુ કે "સવ્વ ભૂયપ્પ ભૂયેસુ સમ્મ ભૂયાઇ પાસઓ" દરેક જીવોને તારા જીવ જેવાજ સમજ અને જાણ તને તારો જીવ પ્યારો છે, તેવી જ રીતે દરેક જીવોને પોતાનો જીવ પ્યારો છે તેને અગ્નિમા હોમી દેવાનો તને શુ અધિકાર છે ? હોમ કરવો જ હોય તો તમારા વિકારોનો વાસનાઓનો કરો અને જનતા આ નવો સ દેશ સાભળી ચોકી ઉઠી જોવા ઉમટી પડી કે આવો નિર્ભય, કર્ણપ્રિય અને હૃદય ગમ સ દેશ આપનાર કોણ મહાન તેજસ્વી, પ્રભાવશાળી, નિર્મોહી પ્રભુના વ્યકિતત્વને જોઇને જ ચરણોમા સમર્પિત થઈ ગઇ

એવી મહાન વિભુતીના દર્શનની એ કાળે સ્ત્રીઓને સુવિદ્યા ન હતી સ્ત્રી એટલે એક દાસી, પુરૂષનુ રમકડુ, અને ગૃહસ ચાલન માટે વગર પગારનુ નૌતરૂં કરનાર તેનાથી કોઇ અધિક લાગણી સ્ત્રીઓ માટે હતી નહિ

પ્રગતિશીલ ગણાતા આ યુગમા સમાન હક્ક માટે ઘણી જ ચળવળ કરવી પડી છે અને પડે છે. જે ધર્મના સિધ્ધાત ઘણાજ ઉચ્ચ છે સર્વ જીવોને સમાન ગણનારા છે તેમા અત્યારે પણ સ્ત્રીઓ માટે ઘણી ઘણી મર્યાદાઓની પાળ બાધેલી છે ધર્મના ઘણા ઉચ્ચ આદર્શોથી સ્ત્રીઓને વ ચિત રાખવામા આવી છે.

પ્રભુ મહાવીરનો મહત્વપુર્ણ સ દેશ હતો, સ્ત્રીઓને આ અવદશામાથી ઉગારવાનો જે ધર્મ સમભાવનુ સ્તોત્ર વહાવી રહ્યો છે, તેમા ઉચ્ચ શુ ? અને નીચ શુ ? સ્ત્રી શુ ? અને પુરૂષ શુ ? દરેકને પોતાના આત્મ કલ્યાણ માટે સ પુર્ણ સ્વત ત્રતા છે દરેક જીવ પોતાના પુરૂષાર્થ વડે મુક્ત અને સિદ્ધ બની શકે છે પ્રભુએ પોતાના સ ઘમા સર્વપ્રથમ સ્થાન આપ્યુ રાજકુમારી ચ દનબાળાને, સાધ્વી ચ દનબાળા તરીકે જે સ્થાન સ ઘમા ગૌતમ સ્વામીનુ તથા દરેક સાધુઓનુ હતું, તેજ સ્થાન ચ દનબાળા તથા દરેક સાધ્વીઓનુ હતુ આવી રીતે આજથી લગભગ અઢી હજાર વર્ષ પહેલા ભગવાન મહાવીરે સ્ત્રીઓના ઉત્કર્ષ માટેનુ "બી' વાવ્યુ અને તે ફાલી ફૂલીને વૃક્ષ થયુ સાધ્વીઓની પર પરા અત્યારે પણ જૈનધર્મમા ઘણી જ છે બલ્કે સાધુઓની સ ખ્યા કરતા સાધ્વીઓની સ ખ્યાતો વિશેષ છે જ પર તુ પ્રખર વિદ્વતામા પણ ઘણા સાધ્વીજીઓ આગળ છે

વચ્ચેના સૈકાઓમાં રાજકીય અસ્થિરતાને અંગે સામાજીક વ્યવસ્થા પણ ઘણી ડામાડોળ થઇ ગઇ. જ્યાં પુરૂષોને જ પુર્ણ સ્વતંત્રતા ન હતી, ત્યા સ્ત્રી સ્વાતંત્ર્યની તો વાત જ કયા ? પરંતુ પૃથ્વી સદાયે "બહુ રત્ના વસુધરા" રહી છે અને તેમાયે ભારતવર્ષની ભુમિએ જેટલા સતોની શૂરવીરોની ભેટ આપી છે તેટલી બીજા કોઇ દેશોને ભાગ્યે જ મળી હશે

કોઇપણ રીત, રિવાજ પ્રથા સારી યા ખરાબ તેને ઉખેડીને નવા વિચાર યા આચારને સ્થાપિત કરવા હોય, ત્યારે ઘણાં માનસિક બળની અને નૈતિક હિંમતની જરૂર હોય છે નૈતિક હિંમતના અભાવે દુનિયા હમેશા નવી વસ્તુને એકવાર તો ઘેલછા સમજીને ઉપહાસ કરી ઉડાવી દેવા પ્રયત્ન કરે છે. પરંતુ દ્રઢતાના સિંચને સિચાયેલ વ્યક્તિ જ અડોલ અને અકંપ રહે છે.

ઝાસીની રાણીએ દેખાડી આપ્યુ કે સ્ત્રીઓ કયાયે શારિરીક અથવા બુદ્ધિબળમા પુરૂષોથી ઉતરતી નથી કુદરતે તે બાબતમા પક્ષપાત કર્યો નથી માનવ સમાજની વ્યવસ્થાએ અમૂક ક્ષેત્રથી સ્ત્રીઓને વંચિત રાખી બુદ્ધિહીન દેખાડવાનો પ્રયાસ કર્યો હતો

અત્યારે સ્ત્રીઓ ઘણા ક્ષેત્રે સમાનતા ભોગવી રહી છે સ્ત્રીઓનુ સ્થાન ઘણું ઊંચુ આવ્યુ છે. દરેક સ્ત્રીએ સ્વમાનતાપૂર્વક જ જીવવું જોઇએ પરંતુ કયારેક લાગે છે કે વિચારોરૂપી વલોણામાથી નીતરેલું આ નવનીત નથી ઉપરના ફીણા પરપોટા જેવું છે.

દરેક ક્ષેત્રની, વાતાવરણની, વ્યક્તિની મર્યાદા હોય છે વિચારપુર્વક તેને સમજીને, અનુકૂળ બનીને જે આગળ વધે છે, તેજ ધ્યેયને પામી શકે છે આંધળી દોટમા કયારેક ગબડી પડવાનો ભય છે અનેક બલિદાનોના પવિત્ર પાયા ઉપર ચણાયેલી આ ઇમારતમાથી આપણે મહેલ બનાવવો જ છે વા, વંટોળ સામે યુગ, યુગાન્તર સુધી અણનમ રહે તેવો અને તે માટે દોટ નહિ પણ સ્થિર પગલાની અતિ આવશ્યકતા છે

આ સ્થિર પગલાં અહિંસા અનેકાન્તવાદ અને અપરિગ્રહના સિદ્ધાતો દ્વારા જ માડી શકાશે સમાજવાદ, સામ્યવાદ કોઇ પણ વાદ દ્વારા વ્યક્તિની શક્તિઓને રૂંધીને સમાનતા લાવી શકાય નહિ

પ્રભુએ સમાજવાદનુ નીરૂપણ કરી તેનું હાર્દ ખૂબજ સરસ રીતે સમજાવ્યુ છે વ્યકિતની શકિતઓને રૂંધીને નહિ, પણ તેને ખીલવીને તેના વડે ભાવનાઓને ઉદ્દાત બનાવી છે અહિંસા અપરિગ્રહનો અર્થ નિષ્ક્રિયતા નથી. અસત્ આચરણ લાચાર બની જોયા કરો નહિ જ્યારે જરૂર હોય, ત્યારે ખમીરવતા બની ખડા થઈ જાવ ગાધીજી આ અહિંસાના સિદ્ધાતને બરાબર સમજ્યા હતા અને તેથી જ અહિંસા દ્વારા આટલી મોટી સિદ્ધિ હાસલ થઇ, અપરિગ્રહના નામે નિષ્ક્રિયતાને અપનાવો નહિ ન્યાયના માર્ગે તમારી શકિતઓને ખીલવી તેના દ્વારા મેળવેલું આસકિત ભાવ વગર જરૂરિયાત પુરતું રાખી, બાકીનુ જેનામા તે શકિત નથી, તેને વ્હેંચી દો. તેથી ઉત્પાદન ઘટતું નથી અને આપોઆપ જ દરેકની જરૂરિયાત જળવાઇ જાય છે

આ છે અપરિગ્રહનો વ્યાપક અર્થ. આ છે સાચો સમાજવાદ તેને બરાબર સમજ
અપનાવવાથી જ જીવન જીવવા માટેના અનિવાર્ય સાધનો અન્ન અને વસ્ત્રની આજની કટોકટ
નિવારણ થઇ શકશે.

આવતાકાળના એંધાણ પારખી, પ્રત્યક્ષ જોઇને જ, પ્રભુ મહાવીરે કરૂણાભાવથી પ્રે
જનતાના સુખ અને શાતિ માટે અહિંસા, સત્ય અને અપરિગ્રહનો મહાન ઉપદેશ આપેલો
જેના આપણી ઉપર આવા અગણિત ઉપકારો છે, તે પ્રભુ મહાવીરની જન્મ જયતિ આવી
છે અને "પચ્ચીસસોમી નિર્વાણ તિથિ" પણ નજીકના ભવિષ્યમા જ આવી રહી છે ત
એ દેવાધિદેવ, પરમકૃપાળુ પરમાત્મા પ્રત્યે આપણુ શુ કર્તવ્ય છે? તે વિચારવાની
એક ડગલું આગળ વધી આચરણમા મૂકવાની ક્ષણ આવી પ્હોચી છે

ક્ષણજીવી કાર્યક્રમો તો દર વર્ષે થતા રહે છે અને ભુલાઇ જાય છે "પચ્ચીસસે
નિર્વાણ તિથિ" ઉપર તો કોઈ સ ગીન કાર્ય કરવાનુ છે જે યુગ યુગાન્તર સુધી દશે દિશાઅ
પ્રભુના સ દેશને ફેલાવતું રહે, પ્રસારિત કરતું રહે.

પ્રભુ મહાવીરના ભકતો! ઉઠો, ઐકયતા સાધો અને સંગીનકાર્યની રૂપ
"વીરાયતન" આકાર લઇ રહી છે, તેમા કાર્ય રૂપી અંજલી અર્પી કૃતાર્થ થાઓ.

जैन कथाओं में नारी

युगों के परिवर्तन के साथ नारी की स्थिति परिवर्तित हुई और उसने कभी सम्मान प्राप्त किया तो कभी निरादर की विषाक्त घूंट पीकर स्वय को धिक्कारा। कभी वह नर की दासी बनी और उसे आराध्य माना तो कभी सेविका बनकर उदर-पूर्ति के लिए दर-दर मारी फिरी। स्वार्थी पुरुष ने इस त्यागमयी नारी को अपने दासत्व मे रखकर ही सुख की सांस ली। उसे ज्ञात था कि एक बार स्वतत्र होने पर नारी अपनी प्रतिभा के बल पर सारे विश्व को प्रभावित कर सकती है। धर्मशास्त्रो ने नारी की स्वतन्त्रता पर अनेक अ कुश लगाए और सदैव उसे शका की भावना से देखा। सहिष्णुता की प्रतिमा इस देवी ने सब कुछ सहा और शनै शनै अपने आपको चेरी मानने मे ही आनन्द का अनुभव किया, किन्तु निरन्तर अपमानित होने से उसकी आत्मा ने विद्रोह किया और नीति-निपुण पुरुष ने अपना दृष्टिकोण बदलकर उसे कुछ अधिकार देने का आश्वासन दे दिया।

नारी की बर्बादी और आजादी की एक लम्बी कहानी है। सन्त कवियो ने तो इसी जननी रूपा नारी को विषय-वासना की प्रतिमूर्ति कहकर नरक द्वार के रूप मे इसे अपमानित किया और सर्पिणी से भी अधिक भयानक इसे बताया। हाँ कतिपय काव्यकार एवं लेखक ऐसे भी हुए जिन्होने नारी-निंदा की कटु आलोचना की और शक्ति स्वरूप नारी को विश्व-सस्कृति की आधार-भूमि बताया। श्री अद्भुत शास्त्री ने अपनी 'नारी' शीर्षक कविता मे इस महिमामयी की इस प्रकार वदना की है:

प्रबल शक्ति री, जग की धात्री नारी
नव निर्माण करो तुम ।
आशाओ की चिर अभिनेत्री,
प्रतिपल जग का मान करो तुम ।

तेरे स्वर के ही सयम ने, सर्जनकर ससार बसाया,
जगती के कल्पित सपनो मे, वह पावन सा प्यार जगाया ।
तेरे अभिनव इन अधरो ने, उल्लासित शृगार किया था,
प्रलय-पुरुष मनु को श्रद्धा बन, मीठा सा उपहार दिया था ।
महिमा मयी महामाया हो, चपला सी प्रतिमा चचल,
तेरे चरणो की छाया मे गिरता-उठता जग प्रतिपल ।
अधरो मे तुम विश्व छिपाए, जीवन मे बढती जाती हो,
आँधी आए बिजली कडके, तूफानो को सहती जाती हो ।
युग देवी, तेरी सत्ता का आदि नही है, अन्त नही है,
तुझ मे जो कुछ मिल जाता है, उसका भी तो अन्त नही है ।

कविवर प्रसाद ने नारी को श्रद्धा-रूप मे सम्मानित कर अपने महाकाव्य कामायिनी की सृष्टि को सफल माना है । इसी प्रकार कवि पन्त ने 'पल्लव' मे कल्याणी, सुकुमार, स्नेहमयी आदि सम्बोधनो से नारी को सम्मानित किया है—

स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि !
तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार,
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि ।
मुझे है स्वर्गागार ।
तुम्हारे गुण है मेरे गान,
मृदुल—दुर्बलता, ध्यान,
तुम्हारी पावनता अभिमान,
शक्ति, पूजन, सम्मान,
अकेली सुन्दरता कल्याणि,
सकल ऐश्वर्यों की सधान !
तुम्हारे छूने मे था प्राण,
सग मे पावन, गगा-स्नान ।
तुम्हारी वाणी मे कल्याणि ।

त्रिवेणी की लहरो का गान।
उषा का था, उर मे आवास,
मुकुल का मुख मे मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव मे भास,
विचारो मे बच्चो के सास।

सामाजिक सीमाओ की परिधि मे आबद्ध नारी के विविध स्वरूप हमे जैन कथाओ मे देखने को मिलते है। भगवान् जिनेन्द्रदेव की जननी के रूप मे वह विश्व वन्दनीय है तो वैधव्य के शाप से शापित वह सर्वत्र अपमानित है। कभी वह महिषी बनकर राज-सभा मे बैठती है तो कभी चेरी बनकर अपने सतीत्व को भी कतिपय मुद्राओ की उपलब्धि के लिए बेचने को बाध्य होती है। कभी वह अपनी प्रवीणता से राजाओ को चकित करती है तो कभी सौत से प्रपीडित बनकर आत्महत्या के कूप मे स्वय को पटक देती है। कभी वह आवेश मे आकर पाप-कर्म करने के लिए कटिबद्ध होती है और फलत अपने सौन्दर्य को खोकर अपकीर्ति के दल-दल मे फँस जाती है तो कभी साध्वी बनकर आध्यात्मिक उपदेशो की वर्षा करने लगती है। कभी वह वेश्या बनकर अपनी उदर पूर्ति हेतु जघन्य से जघन्य पाप करने को आतुर होती है तो कभी अपने सतीत्व के कारण देवताओ की आराध्य देवी बन जाती है। कभी वह पतिव्रता बनकर एक महान् आदर्श की स्थापना करती है तो कभी व्यभिचारिणी बनकर अपनी कामानुरता का प्रदर्शन कर लोक मे घृणा की दृष्टि से देखी जाती है आदि, आदि। यहाँ जैन कथाओ के माध्यम से नारी के विविध वाञ्छनीय एव अवाञ्छनीय रूपो की झाँकियाँ प्रस्तुत की जाती है—

(१) माली की दो लडकियाँ केवल जिन मदिर की देहली पर एक-एक फूल चढाने के कारण मरने के उपरान्त सौधर्म इन्द्र की पत्नियाँ बनी थी। **माली की लडकियो की कथा—पुण्याश्रव कथा कोश, पृष्ठ १**

(२) श्रावस्ती नामक नगरी के सेठ सागरदत्त की पत्नी नागदत्ता सोमशर्मा नामक ब्राह्मण से अनुचित सम्बन्ध स्थापित कर अपनी पतन-शीलता का परिचय देती है। **कर कुण्ड की कथा—पुण्याश्रव कथा कोश**

(३) सुदर्शन सेठ की कथा मे रानी अभयवती लज्जा के कारण आत्मघात करती है और पडिता नाम की सखी भागकर पटना मे वेश्या बनकर रहने लगती है। **पुण्याश्रव कथा कोश**

(४) रानी प्रभावती अपने शील के प्रभाव से देव-पूज्या बनती है और नारी के आदर्श को ससार के सन्मुख रखकर नारी-जाति की प्रतिष्ठा बढाती है। **प्रभावती रानी की कथा, पु० क० को०**

(५) नीलीवाई ने अपने शीलव्रत की परीक्षा मे सफलता प्राप्त की और नगरदेव ने उनकी प्रशस्ति का गान किया ।

नीली बाई की कथा, पु० क० कोश

(६) काश्मीर नरेश की त्रिभुवनरति नामक पुत्री अपने वीणा-वादन कुशलता का प्रदर्शन करती है और घोषणा करती है कि जो उसे वीणा के बजाने मे पराजित करेगा वही उसका पति होगा ।

नागकुमार कामदेव की कथा, पु० क० कोश

(७) मैना सुन्दरी अपनी व्रत-साधना के बल पर अपने पति को कुष्ठ-रोग से मुक्त करती है ।

श्रीपाल एव मैना सुन्दरी की कथा, पुण्याश्रव कथा कोश

(८) सोम शर्मा ब्राह्मण की पत्नी अकारण ही स्वपति से डडो की मार खाकर अपने भाग्य को कोसती है और अपने अबोध बच्चो को साथ लेकर गिरनार पर्वत पर भगवान की शरण मे रहने लगती है ।

अग्निला ब्राह्मणी की कथा, पुण्याश्रव कथा कोश

(९) रानी मदन सुन्दरी अपनी दृढता एव सत्याग्रह से जैन धर्म की प्रभावना करती है और प्रभावती देवी के आसन को कम्पायमान कर देती है ।

आराधना कथा कोश भाग १, पृष्ठ १८२

(१०) रानी चेलिनी सम्राट् श्रेणिक को प्रबोधन देकर अपने कर्त्तव्य का पालन कराती है ।

आ० क० कोश भाग १—महाराज श्रेणिक की कथा—पृष्ठ १५४

(११) राजा सिंहसेन की रानी रामदत्ता अपने चातुर्य से पुरोहित के कहने से समुद्रदत्त के रत्नो को प्राप्त करती है और न्याय का एक आदर्श उपस्थित करती है । **श्रीभूति पुरोहित की कथा, आ० क० को० भाग २**

(१२) चारु दत्त सेठ की कथा से स्पष्ट है कि नारी वेश्या बनकर कितनी कठोरता से मानवता का नाश करती है ।

(१३) विवाह एक धार्मिक सस्कार है जिसमे दो हृदयो का आजीवन बन्धन स्वीकृत किया जाता है । ऐसी स्थिति मे कन्या के विचारो का जानना आवश्यक है । इस सदर्भ मे प्रभावती का कथन उल्लेख्य है । प्रभावती के सकल कलाओ मे निपुण तथा जवान होने पर एक दिन वायुरथ प्रभावती से बोला बेटी, 'सम्पूर्ण विद्याधरो के कुमारो मे तुझे कौन श्रेष्ठ जान पडता है, जिसके साथ तेरा विवाह कर दू । प्रभावती बोली, पिताजी, मुझे जो गति-युद्ध मे जीत लेगा, उसी के साथ विवाह करूँगी अन्य के साथ नही ।''

जयकुमार-सुलोचना की कथा-पुण्याश्रव कथाकोश—

(१४) ऐसी अनेक जैन कथाएँ हैं जिनमे बताया गया है कि अनेक विद्याओ मे निपुण बनकर नारियो ने धर्म प्रचार किया एव सासारिक माया का परित्याग कर मानव सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य वनाया । भगवान महावीर की शिष्या चन्दनबाला ऐसी ही एक स्त्री-रत्न थी । इसी चन्दना (चन्दनवाला) ने महावीर के धर्म मे दीक्षा लेकर और उनकी प्रथम शिष्या बनकर सघ का नेतृत्व किया था । **दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ, डॉ० चन्द्र जैन ,पृष्ठ १०१**

(१५) मनुष्यो की तुलना मे नारी अधिक दृढ प्रतिज्ञ होती है । एक बार जो वह निर्णय ले लेती है उसके पालनार्थ वह दृढ सकल्पी बन जाती है । राजीमती की दृढता यहाँ उदाहरण के रूप मे उल्लेख्य है । नेमिकुमार जब (दीक्षा लेकर) **साधु बनकर गिरनार पर्वत पर तपस्या करने लगे, तब** राजीमती ने भी अविवाहित रहने का दृढ निश्चय किया और श्री नेमिनाथ की अनुगामिनी बन गई । तपस्विनी बनकर जिस साहस का प्रदर्शन राजीमती ने किया वह नारी के स्वाभिमान एव दृढ़ता को प्रमाणित करता है । **राजीमती की दृढ़ता, दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ, ले० डा० जगदीशचन्द्र जैन, पृष्ठ १८३ ।**

यहाँ यह कहना उचित ही है कि अधिकाश कथाओ की प्रमुख पात्र नारी ही हैं ।

इन जैन कथाओ मे चित्रित नारियो को दैवी, मानवी और राक्षसी इन तीन रूपो मे साधारणत विभाजित किया जा सकता है । समाज की सुदृढ नीव नारी मे धार्मिकता पुरुष की तुलना मे अधिक है । वे अपेक्षाकृत अधिक धार्मिक, पवित्र, त्यागशीला और भावुक हैं । राष्ट्रपिता बापू के मतानुसार जीवन मे जो कुछ पवित्र तथा धार्मिक है, स्त्रियाँ उसकी विशेष सरक्षिकाएँ हैं । स्त्री जाति मे छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विद्वत्ता अथवा शरीर बल की बदौलत नही है, इसके कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रद्धा, भावुकता और त्यागशक्ति है । हमे यह स्वीकारना होगा कि जगत मे धर्म की रक्षा मुख्यत स्त्री जाति के बदौलत हुई है ।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि जैन धर्म की सबसे बडी उदारता यह है कि पुरुषो की भाँति स्त्रियो को भी तमाम धार्मिक अधिकार दिये गये हैं । जिस प्रकार पुरुष पूजा-प्रक्षाल कर सकता है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी कर सकती हैं । यदि पुरुष श्रावक के उच्च व्रतो का पालन कर सकता है तो स्त्रियाँ भी उच्च श्राविका बन सकती हैं । यदि पुरुष ऊँचे से ऊँचे धर्म ग्रन्थो

जैन कथाओं में ऐतिहासिकता

इतिहासकारो ने कथाओ की उपयोगिता को स्वीकार किया है। कई देशो के इतिहासो की सृष्टि तो इन कथाओ के आधार पर ही हुई हैं। लोक-मानस मे बसी हुई ये कथाएँ निष्पक्ष भाव से इतिहास के तथ्यो को दुहराती है और काल के प्रभाव से अप्रभावित रहकर ये कहानियाँ कई युगो तक इतिहास के तथ्यो को नष्ट होने से बचाती है। इतिहास शब्द के सकीर्ण अर्थ को न स्वीकार कर मैने इसे व्यापक अर्थ मे व्यवहृत किया है और इसीलिए विभिन्न दृष्टियो से ऐतिहासिकता का इन कथाओ के आधार पर परीक्षण करने का भी प्रयास किया है। धार्मिक विकास, सामाजिक उत्थान, राजनैतिक विकास आदि मे भी तो ऐतिहासिकता अपेक्षित है। ऐसी परिस्थिति मे ये कथाएँ विशेष महत्वशालिनी सिद्ध हो सकती है।

श्रद्धेय डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने अपनी पुस्तक 'दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ' मे सगृहीत ऐतिहासिक कहानियो के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है वह तर्क सगत एव मनन करने योग्य है। वे लिखते है "इन कहानियो का सकलन यथासभव ऐतिहासिक सूत्र से किया गया है। महावीर और बुद्ध के समकालीन अनेक राजा-रानियो का उल्लेख प्राकृत और पालि साहित्य मे आता हैं। जैनो ने इन राजाओ को जैन कहा है और बौद्धो ने बौद्ध। वस्तुत राजाओ का कोई धर्म विशेष नही होता, वे प्रत्येक महान पुरुष की सेवा उपासना करने मे अपना धर्म समझते हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल मे

साम्प्रदायिकता का वैसा जोर नही था जैसा हम उत्तर काल मे पाते है। इसीलिए उस समय जो साधु-सन्त नगरो मे पधारते थे, उनके आगमन को अपना अहोभाग्य समझकर नगर के सभी नर-नारि उनके दर्शनार्थ जाते थे। ऐसी दशा मे श्रेणिक विम्बसार, कूणिक (अजातशत्रु) और चन्द्रगुप्त आदि राजाओ के विषय मे सभवत यह कहना कठिन है कि वे महावीर के विशेष अनुयायी थे या बुद्ध के।

तत्पश्चात् नन्द राजाओ का जिक्र आता है। जैन परम्पराओ के अनुसार कूणिक का पुत्र उदायी विना किसी उत्तराधिकारी के मर गया। उस समय एक नापित पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा, और यह प्रथम नन्द कहलाया। नन्दो का नाश कर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को किस प्रकार पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठाया, इसका विस्तृत वर्णन आवश्यकचूर्णी तथा बौद्धो की महावश टीका मे आता हे।

तत्पश्चात् उज्जयिनी के राजा गर्दभिल्ल का जिक्र आता है। जैन परम्परा के अनुसार ईरान के शाहो ने गर्दभिल्ल को हराकर उज्जयिनी मे अपना राज्य कायम किया। उसके वाद गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने शको को हराकर फिर से उज्जयिनी पर अधिकार किया। इसी समय से विक्रम सवत् का आरम्भ माना जाता है। ईरान के दूसरे वादशाह नभोवाहन या नहपान का उल्लेख जैन ग्रन्थो मे आता है। नभोवाहन भरुकच्छ (भडोच) मे राज्य करता था, और उसके पास अटूट धन था। नभोवाहन और पइट्ठान (पैठन) के राजा सालिवाहन (शालवाहन) के युद्ध का उल्लेख आता है, जिसमे अन्त मे सालिवाहन की विजय वतायी गयी है। सालिवाहन के मत्री अपने राजा को छोडकर नभोवाहन से जा मिलने सवन्धी कूटनीति की तुलना अजातशत्रु के मत्री वर्षकार के लिच्छवियो से जा मिलने के साथ की जा सकती है। इन कहानियो से प्राचीन भारत की सामाजिक अवस्था पर भी प्रकाश पडता है। उस समय के सामन्त लोग बहुत विलासी होते थे, वहुपत्नीत्व प्रथा का चलन था। कूटनीति के दॉव-पेच काम मे लाये जाते थे। महायुद्ध होते थे। राजा की आज्ञा पालन न करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था। कैदियो को वन्दीगृह मे कडी यातनाएँ भोगनी पडती थी, सामन्त लोग छोटी वातो पर लड वैठते थे। राजा यथासभव क्षत्रिय धर्म का पालन करते थे। शरणागत की रक्षा करना परम धर्म समझते थे, और नि शस्त्र पर हाथ उठाना क्षत्रियत्व का अपमान समझते थे। राजा और सेठ-साहूकार अतुल धन सपत्ति के स्वामी होते थे।

साधारणतया लोग खुशहाल थे, परन्तु दरिद्रता का अभाव नही था। दास प्रथा मौजूद थी, ऋण आदि न चुका सकने कारण दास-वृत्ति अगीकार करनी पडती थी। स्त्रियो की दशा बहुत अच्छी नही थी, यद्यपि वे मेले उत्सव आदि के अवसर पर स्वतत्रता पूर्वक बाहर आ जा सकती थी। वेश्याएँ नगरी की शोभा मानी जाती थी, और राजा उनके रूपबल की प्रशसा करता था। व्यापार बहुत तरक्की पर था। व्यापारी लोग दूर-दूर तक अपना माल लेकर बेचने जाते थे।[1]

कुछ जैन कथाएँ तो हजारो वर्ष पुरानी है, जिनके अध्ययन से भारत के प्राचीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। समय के अन्तराल से अनेक ऐतिहासिक तथ्य धूमिल हो रहे है और उनकी सच्चाई पर सन्देह भी होने लगा है, लेकिन सतत निष्पक्ष अन्वेषण से सत्य स्पष्ट हो ही जाता है। कतिपय ऐसी जैन कथाएँ हे जिनमे कल्पना के सहारे रोचकता की अभिवृद्धि की गई है लेकिन ऐतिहासिकता की उपेक्षा नही हो पाई है।

चाणक्य के क्रोध ने किस प्रकार की कूटनीति की सर्जना की और किस ढग से नन्द वश को विनाश की आग मे पटका, इसका परिज्ञान नन्दि-मित्र की कथा (पुण्याश्रव कथाकोष—पृष्ठ १६३) से हो सकता है। रामकथा से सम्बन्धित जैन कथाओ के अनुशीलन से कई ऐसे तथ्य सामने आते है जो प्राचीन इतिहास की सच्चाई को प्रभावित करते है और वानर-वश एव राक्षस-बश की ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण रखते है। पटना (पाटलिपुत्र) राजगृही, बनारस, विन्ध्यदेश, उज्जयिनी विदिशा, अयोध्या, हस्तिनापुर, खानदेश कौशाम्बी, चम्पापुर, चौल देश, बुन्देलखड, बघेलखन्ड, विहार, उडीसा, महाराष्ट्र, कुतलदेश, सोरठ आदि की राजव्यवस्था क्या थी ? इन भू-भागो की प्राचीनता क्या है, यहाँ के शासको की पुरातन शासन प्रणाली क्या थी ? इत्यादि का परिचय हमे जैन कथाओ से उपलब्ध हो सकता है।

द्यूत,[1] स्वयवर[2] नाग पूजा[3], यक्ष-पूजा[4], दहेज-प्रथा[5], वेश्या-वृत्ति[6], नरमास-भक्षण[7], बहुपत्नी-प्रथा[8], विजातीय विवाह[9] आदि की पुरातनता को जानने के लिए निम्न जैन कथाओ का अध्ययन भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

1 नागकुमार कामदेव की कथा— पुण्याश्रव कथाकोश

2 पूतिगधा और दुर्गन्धा की कथा— पुण्याश्रव कथाकोश

---

1 दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ-(भूमिका पृष्ठ १०-११)

3 सूर्यमित्र और चाडाल पुत्री की कथा ,, ,,
4 लोक-देवता (प्रो० चेतनप्रकाश पाटनी) मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ

5 मृगसेन धीवर की कथा— आ क को दूसरा भाग
6 दृढ सूर्य चोर की कथा— पुण्याश्रव कथाकोश
7 जैन रामायण चतुर्थ सर्ग (कृष्णलाल वर्मा) पृष्ठ १५३
8 श्री वज्रकिरण राजा की कथा आ कथा कोश
9 नागकुमार कामदेव की कथा ,, ,,

दिगम्बर एव श्वेताम्बर आम्नायो का क्या इतिहास है और इनका विकास किस प्रकार हुआ है ? इस सन्दर्भ मे **नन्दिमित्र की कथा, पुण्याश्रव कथाकोष पुष्ठ २६८ पर्याप्त प्रकाश डालती है।**

वेश्या-वृत्ति का भी एक इतिहास है। प्राचीन काल मे राजकुमार शिष्टाचार की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वेश्याओ के यहाँ भेजे जाते थे और ये राजपुत्र वहाँ रहकर जीवनोपयोगी बहुत सी बातो को सीखते थे। ये गान-नृत्य विशारदा वेश्याएँ अपने सद्व्यवहार एव शिष्टाचार-पद्धति से अनेक युवको को सहज ही मे विमोहित कर लेती थी । कुछ ऐसी कथाएँ भी उपलब्ध होती है जिनसे ज्ञात होता है कि कभी-कभी नवयुवक वेश्या की पुत्रियो से विवाह भी कर लेते थे । इस सम्बन्ध मे नागकुमार कामदेव की की कथा उल्लेख्य है ।[1] इस कथा को उद्धृत करते हुए श्री परमेष्ठीदास जी जैन लिखते है कि जैन शास्त्रो मे विजातीय विवाह के अनेक प्रमाण उपलब्ध है। नागकुमार ने तो वेश्या पुत्री से विवाह किया था, फिर भी उनने दिगम्बर मुनि की दीक्षा ग्रहण की थी । इतना होने पर भी वे जैनियो के पूज्य बने रहे । जैन शास्त्रो मे जब इस प्रकार के सैकडो उदाहरण मिलते है जिनमे विवाह सम्बन्ध के लिए किसी वर्ण, जाति या धर्म का विचार नही किया गया है और ऐसे विवाह करने वाले स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, तब एक ही वर्ण एक ही धर्म और एक ही प्रकार के जैनियो से पारस्परिक सम्बन्ध (अतर्जातीय विवाह) करने मे कौन सी हानि है ?[2]

---

1 पुण्याश्रव कथाकोश, दूसरी वृत्ति, प्रकाशक जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, पृष्ठ १२६
2 जैनधर्म की उदारता पृष्ठ ६८

' स्वयम्बर-प्रथा की यदि हम इतिहास-क्रम से समीक्षा करे तो हमे ये जैन-कहानियाँ बडी सहायक होगी। इसी प्रकार म्लेच्छो के प्रति जो अनुदारता आज दिखाई जा रही है वह पूर्व मे न थी। अनेक नरेशो ने म्लेच्छ कन्याओं के साथ विवाह करके प्राचीन काल मे उनके साथ (म्लेच्छो के साथ) आत्मीयता स्थापित की थी। वस्तुत ये मानव ही हैं और इनकी आत्मा को हमे अमानवीय व्यवहार से नही दुखाना चाहिए।

जैन शास्त्रो को, कथा ग्रन्थो को या प्रथमानुयोग को उठाकर देखिए। उनमे आप को पद पद पर वैवाहिक उदारता दिखाई देगी। पहले स्वयम्वर प्रथा चालू थी, उसमे जाति या कुल की चिन्ता न करके गुण का ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसी भी छोटे या बडे कुल वाले को उसके गुणो पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी उसे कोई बुरा नही कहता था। हरिवश पुराण मे इस सम्बन्ध मे स्पष्ट लिखा है कि स्वयम्वर गत कन्या अपने पसद वर को स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयम्बर मे कुलीनता-अकुलीनता का कोई नियम नही होता। (जैन धर्म की उदारता पृष्ट ६३) जैन-पुराणो के अध्येताओ से यह तथ्य छिपा हुआ नही है कि तद्भव मोक्षगामी महाराजा भरत ने बत्तीस हजार म्लेच्छ कन्याओ से विवाह किया था, किन्तु उनका स्तर कम नही हुआ था। जिन म्लेच्छ कन्याओ को भरत ने विवाहा था वे म्लेच्छ धर्म-कर्म विहीन थे। उसी प्रकार भगवान शान्तिनाथ (चक्रवर्ती) सोलहवे तीर्थंकर हुए हैं। उनकी कई पत्नियाँ तो म्लेच्छ कन्याएँ थी। **जैनधर्म की उदारता, पृष्ठ ६६,६७** चक्रवर्तित्व की विभूति के प्रमाण मे बत्तीस हजार म्लेच्छ राजाओ की पुत्रियो का भी उल्लेख किया गया है। देखिए–**पुण्यास्रव कथाकोश पृष्ठ ३५७।**

इस प्रकार इन कथाओ का अध्ययन इतिहास के विविध दृष्टिकोणो को ध्यान मे रख कर किया जा सकता है तथा इस अध्ययन मे पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो सकती है।

सस्कृत भाषा मे लिखे हुए जैन पुराण ग्रन्थ अति प्राचीन है। उनमे अपेक्षाकृत बहुत अधिक ऐतिहासिक सामग्री सीधी-सादी भाषा मे सुरक्षित है। अलवत्ता कही-कही पर उसमे धार्मिक श्रद्धा की अभिव्यजना, कर्म सिद्धान्त की अभिव्यक्ति को लिए देखने को मिलती है।

जैन पुराणो के साथ ही जैन कथाओ के महत्व को नही भुलाया जा सकता जिनमे बहुत सी छोटी-छोटी कथाएँ सगृहीत है। ऐसे कथा ग्रन्थ, प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श, हिन्दी, कन्नड आदि भाषाओ मे मिलते हैं। इनमे

अनेक कथा ऐतिहासिक तत्व को लिए हुए है। किसी मे भेलसा (विदिशा) पर म्लेच्छो (शको) के ऐतिहासिक आक्रमण का उल्लेख है तो किसी मे नन्द राजा और उनके मत्री शकटार आदि का वर्णन है। किसी मे मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और उनके गुरु श्रुतकेवली भद्रबाहु का चरित्र-चित्रण किया गया है तो किसी अन्य मे उज्जैन के गर्दभिल्ल और विक्रमादित्य का वर्णन है। साराश यह कि जैन कथा ग्रन्थो मे भी बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री बिखरी पडी है। महाकवि हरिषेण विरचित कथाकोश विशेष रूप से दृष्टव्य है।

जैन साहित्य मे कुछ ऐसे काव्य एव चरित्रग्रन्थ भी है जो विशुद्ध ऐतिहासिक है। उनमे ऐतिहासिक महापुरुषो का ही इतिहास ग्रन्थबद्ध किया गया है। इस प्रकार का पर्याप्त साहित्य श्वे० जैन समाज द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, ऐतिहासिक रास सग्रह आदि पुस्तके उल्लेखनीय है। पार्श्वचरित्र, महावीर चरित्र, भुजबलि चरित्र, जम्बूस्वामी चरित्र, कुमारपाल चरित्र, वस्तुपाल रास इत्यादि अनेकानेक चरित्र ग्रन्थ इतिहास के लिए महत्व की वस्तु है।

जैन सस्कृत साहित्य मे पुरातन प्रबध ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से विशेष मूल्यवान हैं। ये प्रबध-ग्रन्थ एक प्रकार के विशद निबन्ध है, जिनमे किसी ऐतिहासिक घटना अथवा विद्वान् या शासक का परिचय कराया गया है। श्री मेरुतुगाचार्य का प्रबन्ध चिन्तामणि प्रबध-ग्रन्थो मे उल्लेखनीय है, जो सिंघी जैन ग्रन्थमाला मे छप भी चुका है। इस प्रकार जैन साहित्य मे इतिहास की अपूर्व सामग्री बिखरी पडी है। दक्षिण के जैन कन्नड और तामिल साहित्य मे भी अपार ऐतिहासिक सामग्री सुरक्षित है किन्तु उसके अन्वेषण की आवश्यकता है। तामिल का 'शिलप्पाधिकारम्' काव्य और कन्नड का 'रावली कथा' नामक ग्रन्थ भारतीय इतिहास के लिए अनूठे ग्रन्थ रत्न है।[1]

1, जैन साहित्य मे प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री-ले० श्री कामता प्रसाद जैन (प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ) पृष्ठ ४५८

जैन कथाओं में अलौकिक तत्व

अलौकिकता जैन कथाओ की एक विशेषता है जो इनकी रोचकता को बढाती है और कथानक मे एक विशिष्ट मोड को जन्म देकर उसकी अभिवृद्धि मे नूतनता उत्पन्न करती है। यही अलौकिता पाठक एव श्रोता के मानस मे कौतूहल समुत्पन्न करके कथा के प्रति नूतन आकर्षण बनाये रखती है। पात्रो के चरित्रो के विकास मे इस अलौकिकता का निशेष महत्व है।

वस्तुत लोक-समाज मे हास्य-कथाओ के समान अलौकिक कथाएँ भी अत्यधिक प्रिय है तथा उनका विशिष्ट स्थान है। मनुष्य अलौकिक तत्वो की कल्पना सदैव से किसी न किसी रूप मे अवश्य करता रहा है जो उसके सब कार्यो को सुगम बना सके तथा जिसके माध्यम से वह अलभ्य वस्तुओ को भी प्राप्त कर सके। वह अपने जीवन का अधिक समय कल्पना लोक मे व्यतीत करता है तथा अपनी अतृप्त इच्छाओ को इसी के द्वारा पूर्ण करता है। इन सब भावनाओ की पूर्ति इन्ही कहानियो के द्वारा होती है। अलौकिक कहानियाँ यद्यपि असत्य होती है और मनुष्य को वास्तविक जगत से दूर ले जाती है पर मनुष्य की अतृप्त आकाक्षाओ को पूरा करती रहती है। इसीलिए उसे इस प्रकार की कहानियो को सुनकर बडा आनन्द मिलता है जो क्षणिक ही होता है। यही कहानियाँ मनुष्य के अन्तर्मन मे उपस्थित उस अद्भुत मानव की परोक्ष रूप से पूर्ति करती रहती है जो ऐसे दानव को विजय करना चाहता है जो उमकी सेवा मे रह सके तथा उसको धन दे सके, ऐश्वर्य दे सके और यही

का अद्भुत मानव अमी जल आदि पीकर अमर हो जाना चाहता है । इन अलौकिक कहानियो मे सदा यह देखने को मिलता है कि जो सत्यनिष्ठ है वह बडी से बडी विरोधी शक्तियो से भी सघर्ष करके अत मे विजयी होता है । इन कहानियो की अलौकिकता मे लोक-मानव का इतना ही विश्वास है जितना अन्य अधविश्वासो मे । वह दानव, परी, भूत, प्रेत, जादू आदि मे विश्वास करने के कारण इन कहानियो को भी बहुत आस्था से कहता और सुनता है । कई वार ये लोग भूत, प्रेत, दानव तथा जादू भी सिद्ध करते पाये जाते है ।"[1]

जैन-कथाओ मे अलौकिकता का अश पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है लेकिन इस प्रकार की अलौकिक कथाएँ सर्वथा असत्य नही होती है । एक ओर ये कहानियाँ महापुरुषो तथा जैन मुनियो के अलौकिक प्रभाव को प्रदर्शित करती है और दूसरी ओर जैन धर्म के अनुयायियो के सन्मुख यह प्रमाणित करती है कि जैन-धर्म का प्रभाव प्रदर्शन प्राय विश्व की समस्त धर्म सम्बन्धी कहानियो मे देखने को मिलता है । यही अलौकिक तत्व धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करता है एव मानव-समाज को धर्म-भीरु बनाता है । ऋषि-मुनियो ने इसी प्रकार की अलौकिक कथाओ की सृष्टि करके लोक-जीवन मे धार्मिकता को स्थिर किया है जो कई युगो के व्यतीत हो जाने पर भी आज लोक-मानस मे पूर्ववत् सुदृढ है ।

आज के इस वैज्ञानिक युग मे इस प्रकार के अलौकिक तत्वो को कपोल कल्पित कहा जा रहा है, लेकिन जिस प्रकार विज्ञान ने अपनी गरिमा के माध्यम से अनेक विचित्र तथ्यो को ससार के आगे सहज रूप मे प्रमाणित कर दिया है उसी प्रकार यदि अन्वेषण किया जाय तो जैन-कथाओ मे वर्णित कई 'आश्चर्य' सत्य सिद्ध हो सकते है । वीतरागी जिनदेव द्वारा कथित अलौकिक तत्वो को हम निस्सार नही मान सकते है । मानव अपनी सीमित मेधा से इन्हे नापने का असफल प्रयत्न न करे तो श्रेयस्कर ही है । यह पूर्ण सम्भव है कि आज के वैज्ञानिक यदि जैन-आश्चर्यो की पूर्ण खोज करे तो उन्हे ऐसे तथ्यो का परिज्ञान होगा जो उन्हे शाश्वत सत्य की ओर आकर्षित करेगे और विश्व के सन्मुख कई नूतन सत्य साकार बनेगे ।

जैन धर्म आत्मा की अनन्त शक्ति मे विश्वास करता है और इसकी यह चिरन्तन मान्यता है कि कर्मो का क्षय करके आत्मा परमात्मा बन जाती

---

1 खडी बोली का लोक-साहित्य—ले० डॉ० सत्या गुप्त—पृष्ठ १८७ तथा १६३ ।

है । ऐसी स्थिति मे अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्मा के प्रभाव से जो अलौकिकता प्रदर्शित होती है वह कैसे कल्पित कही जा सकती है । तप पूत दिगम्बर मुनियो के प्रभाव को प्रमाणित करने वाले आश्चर्यो को क्या हम कल्पित कह सकेंगे ? भले ही ये आज के मानव के लिए सन्देहास्पद हो लेकिन जैनाचार्यो के लिये तो ये निर्णीत ही थे तथा आज भी है । आत्मा की पावनता से यदि दुर्भिक्ष शान्त होता है एव भयावह रोग शमित हो जाते है तो कोई आश्चर्य नही है । मत्रादि के प्रभाव से जो विद्वान परिचित है वे इस तथ्य को अस्वीकृत न करेंगे कि मत्रो की सिद्धि से हिंसक पशु मृग की भाँति विनम्र हो जाते है, असाध्य रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते है एव विनाशक आक्रमण निष्फल हो जाते है । भक्तामर स्तोत्र की कथाएँ इस सन्दर्भ मे उद्धृत की जा सकती है । आज के कतिपय विद्वान् कथाओ मे उल्लिखित इस प्रकार के अलौकिक तत्वो को कथानक रूढियो अथवा लोक-विश्वासो के रूप मे स्वीकार करते है ।

सामान्यत जैन कथाओ मे इन अलोकिक तत्वो को निम्नलिखित प्रयोजनार्थ समाविष्ट किया गया है ।

(१) जैन-धर्म के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए ।
(२) कथावस्तु को आकर्षक बनाने के लिए ।
(३) मत्रादि के प्रभाव को बनाने के लिए ।
(४) महापुरुषो की गरिमा को चित्रित करने के लिए ।
(५) प्रमुख पात्रो के चरित्रो के विकास के लिए ।
(६) उत्सुकता समुत्पन्न करने के लिए ।
(७) समुचित वातावरण की सृष्टि के लिए ।
(८) परम्परा के निर्वाहार्थ ।
(९) कथानक की अभिवृद्धि के लिए ।
(१०) उद्देश्य की पूर्ति-हेतु ।
(११) कथावस्तु मे नए मोड लाने के लिए ।
(१२) विशिष्ट अभिप्राय की पुष्टि हेतु आदि ।

जैन कथाओ मे विविध प्रकार के अलौकिक तत्वो को प्रदर्शित किया गया है । यहा ऐसे कतिपय तत्वो की सामान्य चर्चा की जा रही है—

(१) ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से हथियारो का पुष्पादिक के रूप मे परिवर्तित हो जाना एव उसी समय यक्षादि का प्रकट होकर राजादि के नौकरो को जहाँ का तहाँ कील देना तथा माया से चतुरगिणी सेना को तैयार करना । **पुण्यास्रव-कथाकोष, सुदर्शन सेठ की कथा, पृष्ठ ११६ ।**

(२) नगर देवता के आसन का कंपित होना, नगर के बाहरी दरवाजो को कीलित करना एव महासती के वाम चरण-स्पर्श से ही उनका खुलना। **नीली बाई की कथा-पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ १९५**

(३) विद्या के प्रभाव से सुन्दर विमान का निर्माण और उसके माध्यम से आकाश-यात्रा करना। **नागकुमार कामदेव की कथा-पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ २२८**

(४) चार घातिया कर्मो के नष्ट होने से भगवान के दश अतिशयो का समुत्पन्न होना। यथा चारसौ कोस पर्यन्त कही भी दुर्भिक्ष का न पडना, आकाश मे निराधार गमन करना, भगवान के समवसरण मे किसी भी जीव के द्वारा अन्य किसी जीव का घात न होना, भगवान का सदा निराहार रहना, चारो दिशाओ मे भगवान के चार मुखो का दिखाई पडना, सर्व विद्येश्वरता भगवान के परम औदारिक शरीर की छाया का न पडना आदि। **पुण्यास्रव कथाकोश पृष्ठ ३४८**

(५) चक्रवर्तित्व की विभूति का वर्णन अठारह करोड घोडे, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, चौरासी करोड प्यादे, बत्तीस हजार शरीर की रक्षा करने वाले यक्षाधीश, छ्यानवे हजार रानियाँ, तीन करोड गाये, नव निधि आदि कम आश्चर्यजनक नही है। इसी प्रकार काल निधि, महाकला निधि, पाड्कनिधि माणवक निधि, नैसर्प निधि, सर्वरत्न निधि आदि के द्वारा क्रमश इच्छित वस्तुओ की प्राप्ति होना, सोना, चाँदी, लोहा आदि खनिज पदार्थो की इच्छानुसार उपलब्धि होना, सुगधित चावल, गेहू आदि धान्यो का इच्छानुसार प्राप्त होना। कवच तलवार गदा आदि अनेक प्रकार के शस्त्रो की आवश्यकतानुसार प्राप्ति होना आदि।

(६) दिगम्बर मुनि को अन्तराय रहित एव विधिवत आहार देने से पचाश्चर्यो का होना। एव पुण्य-प्रभाव से करोडो रत्नो की सहसा वर्षा होना। **सुकेत नामक सेठ की कथा-पुण्यास्रव कथा कोष-पृष्ठ २५७**

(७) किजल्क जाति के पक्षियो के निवास से महामारी, दुर्भिक्ष, रोग, अपमृत्यु आदि का न होना। **आराधना कथा कोष दूसरा भाग पृष्ठ ५५**

(८) विद्याबल से दुर्गन्ध से दूषित शरीर का सुगध मय हो जाना। **आराधना कथा कोष भाग २ पृष्ठ ९५**

(९) मत्रसिद्धि से आकाश गामिनी विद्या की उपलब्धि। **आराधना कथा कोष प्रथम भाग पृष्ठ ६५**

(१०) ऋद्धि के प्रभाव से वडा और छोटा रूप बनाना तथा तीन डगो मे समस्त भू-मण्डल को नाप लेना आदि । **विष्णु कुमार मुनि की कथा आ. क कोष प्रथम भाग पृष्ठ १२०**

(११) तपस्या मे सलग्न दिगम्बर मुनि के सामने शिकारी कुत्तो का नत मस्तक हो जाना एव विपाक्त और तीक्ष्ण वाणो का पुष्पवत् होना । **महाराज श्रेणिक की कथा, आ. क कोष प्रथम भाग पृष्ठ १५७**

(१२) व्रत के प्रभाव से हिंसक जल-जीवो से भरे हुए जलाशय मे फेके गए मनुष्य की रक्षा होना तथा तालाब मे उसके सम्मानार्थ देवो द्वारा भव्य सिंहासन का निर्माण । **यमपाल चाडाल की कथा, आ. कथा कोष प्रथम भाग पृष्ठ १८४**

(१३) पूज्य चारण ऋद्धि धारी मुनिराज को आहार देने से स्वर्ग के देवो द्वारा रत्नो की वर्षा का किया जाना, कल्पवृक्षो के सुन्दर और सुगन्धित फूलो की वर्षा होना, अनायास दुन्दुभि बाजो का बजना, मद-सुगध वायु का चलना एव जय-जयकार का चारो दिशाओ मे होना आदि । **दान करने वालो की कथा, आ कथा कोष तृतीय भाग पृष्ठ २२३**

(१४) भक्तामर स्तोत्र का जाप करने से असाध्य रोगो का शमन होना, दावाग्नि का शान्त होना, क्रुद्ध पारावार का शमित होना, भयावह तूफान का विलीन होना हिंसक पशुओ का दयार्द्र होना, निर्धन का धनपति बनना, विपत्तियो का नष्ट होना, सर्प-दश से बचना आदि । **भक्तामर स्तोत्र की कथाएँ ।**

(१५) व्रत-पूजादि से असाध्य कुष्ठ रोग का निर्मूल होना । **मैनासुन्दरी की कथा ।**

(१६) मुनि दर्शनादि से जाति स्मरण हो जाना ।

(१७) कल्पवृक्षो से मनोकामना की पूर्ति होना ।

(१८) विभिन्न प्रकार के देवी देवताओ से असभव कार्यों का सभाव्य रूप मे प्रदर्शन ।

(१९) जिनेन्द्र भगवान की माता की सेवामे देवियो का सलग्न रहना, इनके (जिनेन्द्र देव के) जन्मोत्सव पर स्वर्ग से इन्द्रो का आना, सुमेरु पर्वत पर क्षीर सागर के जल से इनका स्नान कराना, इस मगलमय अवसर पर देवागनाओ का नृत्य करना एव गधर्व देवो द्वारा प्रशस्ति-गान आदि । **आराधना कथा कोष भाग पृष्ठ १९६**

(२०) तीर्थ कर का जन्म होते ही भवनवासी देवो के घर शख बजना, व्यतरो के निवास-स्थान मे भेरी का, ज्योतिषियो के यहाँ सिहनाद का और कल्पवासियो के यहाँ घण्टा का शब्द होना। **पुण्यास्रव कथा कोष पृष्ठ ३३५**

(२१) जिनेन्द्र देव के जन्म-समय उनके सौन्दर्य को देखने के लिए इन्द्र का हजार नेत्र करना तथा पाण्डुक वन की ईशान दिशा मे स्थित शुभ्र चन्द्राकार पाण्डुकशिला पर रत्नजडित सिहासन पर विराजमान जिनेन्द्रदेव (वाल रूप मे) का बारह योजन ऊँचे, आठ योजन चौडे, एक योजन मुख वाले १००८ घडो से पाँचवें क्षीर सागर के जल से अभिषेक करना।

(२२) देवकृत चौदह अतिशयो का होना—(१) अर्द्ध मागधी भाषा (२) सर्वजन मैत्री (३) समवशरण का समस्त ऋतुओ के फल-पुष्पादि से सुशोभित होना (४) रत्नमयी मही (५) विहारानुकूल मारुत (६) वायुकुमार देवो द्वारा धूलि को शान्त करना। (७) मेघकुमार जाति के देवो द्वारा समवशरण मे गन्धोदक की वर्षा करना (८) भगवान के गमन करने मे जहाँ उनका पैर पडता था, वहाँ उनके पैर के नीचे आगे पीछे दोनो जगह सात-सात कमलो की रचना देवो-द्वारा किया जाना। (९) समस्त पृथ्वी का हर्षित होना (१०) जन मोदन (मनुष्यो का प्रमुदित होना) (११) आकाश का सदा निर्मल होना (१२) देवो का भगवान के दर्शनार्थ परस्पर बुलाना (१३) धर्मचक्र का गमन काल मे आगे-आगे चलना (१४) अष्ट मगल द्रव्य।

जैन कथाओं में लोक विश्वास

जैन कथाओ मे लोक विश्वासो का भी अनेक रूपो मे चित्रण हुआ है। स्वप्नो के सम्बन्ध मे इन कथाओ मे अधिक चर्चा हुई है। कहा जाता है कि आगामी घटनाओ का सकेत स्वप्नो के माध्यम से सहज ही मे मिल जाता है। ये स्वप्न ही होने वाले लाभ अलाभ का परिचय दे देते है। देवी-देवता अपने भक्तो की सफलता एव असफलता का निर्देश स्वप्नो के द्वारा ही किया करते है। जैन विद्वान भलीभाँति जानते है कि जब कोई तीर्थ कर किसी भाग्यवती नारी के गर्भ मे आते है तब उस पुण्यवती ललना को १६ स्वप्न आते है जिनके फलो को सुनकर वह स्वय को भाग्यशालिनी मानती है और शीघ्र ही तीर्थ कर की जननी बनने की प्रतीक्षा करने लगती है। इन स्वप्नो की तालिका इस प्रकार है—(१) श्वेत हाथी (२) श्वेत बैल (३) सिह (४) लक्ष्मी (५) मालायुग्म (६) चन्द्र (७) सूर्य (८) मीन युग्म (९) कुम्भ युग्म (१०) निर्मल सरोवर (११) समुद्र (१२) सिंहासन (१३) विमान (१४) हर्म्य (१५) रत्नराशि (१६) अग्नि। इन स्वप्नो का फल यही है कि महापुण्यवान् विश्व-विश्रुत देवाधिदेव लोक-पूज्य श्री तीर्थ कर देव जन्म लेगे। **पुण्याश्रव कथा कोश—पृष्ठ ३३४**

राजा चन्द्र गुप्त ने किसी रात्रि के पिछले पहर मे निम्नस्थ स्वप्न देखे थे—

(१) सूर्य का अस्त होना (२) कल्प वृक्ष की शाखा का टूटना (३) आते हुए विमान का लौटना (४) वारह फणों का सर्प (५) चन्द्रमा मे

छिद्र (६) काले हाथियो का युद्ध (७) खद्योत (८) सूखा सरोवर (९) धूम (१०) सिहासन (११) सुवर्ण के पात्र मे खीर खाता हुआ कुत्ता (१२) हाथी के सिर चढा हुआ बदर (१३) कूडे मे कमल (१४) मर्यादा का उल्लघन करता हुआ समुद्र (१५) तरुण बैलो से जुता हुआ रथ (१६) और तरुण बैलो पर चढे हुए क्षत्रिय। एक मुनिराज ने प्रार्थना करने पर इन स्वप्नो का फल इस प्रकार बताया था —

(१) राजन् ! पहले स्वप्न मे जो सूर्य को अस्त होता देखा है, वह सूचित करता है कि सकल पदार्थो का प्रकाश करने वाला जो परमागम (केवल ज्ञान) है उसका अस्त होगा। (२) दूसरे स्वप्न मे जो कल्प वृक्ष की डाली का टूटना देखा है, उसका फल यह है कि क्षत्रिय लोग न तो राज्य करेगे और न दीक्षा ग्रहण करेगे (३) आते हुए विमान के लौट जाने का फल यह है कि आज से यहाँ पर देव तथा चारण मुनियो का आगमन न होगा। (४) बारह फणो के सर्प से जानना चाहिये कि यहाँ बारह वर्षो का दुष्काल पडेगा (५) चन्द्रमडल मे छिद्र होने से समझना चाहिए कि जैनमत मे सघ आदि का भेद हो जायगा। (६) काले हाथियो के युद्ध से जान पडता है कि अब से यहाँ पर यथेष्ट वर्षा न होगी। (७) खद्योत के देखने का फल यह होगा कि परमागम (द्वादशाग) का उपदेश कुछ ही दिनो तक रहेगा। (८) मध्य मे सूखा सरोवर सूचित करता है कि आर्य खड के मध्य देश मे धर्म का विनाश होगा। (९) धूम का देखना बतलाता है कि अब दुर्जन और धूर्त अधिक होगे। (१०) सिहासन पर बदर का बैठना स्पष्ट कह रहा है कि आगे नीच कुल वालो का राज्य होगा। (११) सोने के पात्र मे कुत्ते का खीर खाना बतलाता है कि आगे राज सभाओ मे कुलिगियो की पूजा होगी (१२) हाथी पर बदर का बैठना सूचित करता है कि राजकुमार नीच कुल वालो की सेवा करेगे। (१३) कूडे मे कमल के देखने से विदित होता है कि राग-द्वेष सहित कुवेषी कुलिगियो मे तपादिक की क्रिया दीख पडेगी (१४) समुद्र मर्यादा का उल्लघन होना जो देखा है वह सूचित करता है कि राजा षडाग भाग से अधिक कर लेगे। (१५) तरुण बैलो सहित रथ दिखलाता है कि बालक तप करेगे और वृद्धावस्था मे उस तप मे दोष लगावेगे। (१६) तरुण बैलो पर चढे हुए क्षत्रिय प्रकट करते है कि क्षत्रिय लोग कुधर्म मे लीन होगे।

पुण्याश्रय कथा कोश पृष्ठ २८०—८१

इसी प्रकार उज्जयिनी नगरी के निवासी धनपाल वैश्य की पत्नी प्रभावती ने रात्रि के अन्तिम भाग मे स्वप्न मे एक ऊँचा बैल, कल्पवृक्ष,

चन्द्रमा आदि देखे थे। इनका फल यह हुआ कि वह एक भाग्यशाली एव पुण्यवान पुत्र की जननी बनी।

धन्यकुमार की कथा, पुण्याश्रव कथा कोश–पृष्ठ २८१

शुभाशुभ स्वप्नो की चर्चा के उपरान्त शकुनापशकुनो का भी कथाओ मे उल्लेख हुआ है। पडित विश्वदेव का कथन है कि प्रस्थान करते समय अथवा किसी नगरादि मे प्रवेश करते समय यदि दिगम्बर मुनि, राजा, घोडा, मयूर, हाथी और बैल मिले तो जानना चाहिये कि उस काम मे सिद्धि होगी।

पुण्याश्रव कथा कोश पृष्ठ २५६

जैन कथाओं के पात्र

कथाओ मे पात्रो की अनिवार्यता असदिग्ध है। ये पात्र ही है जो कथा को जन्म देते है और उनके ही सहारे कथावस्तु समुचित विस्तार प्राप्त करती है। पात्र ही कथानक मे अलौकिकता लाते है और ये ही कथावस्तु मे नये मोड लाकर पाठको के सम्मुख जीवन की सम-विषम परिस्थितियो को प्रस्तुत करते हैं। सत्य तो यह है कि कथाओ के निर्माण के प्रमुख आधार पात्र ही है। दूसरे शब्दो मे हम यो कह सकते है कि पात्रो के अभाव मे कथा का अस्तित्व भी असभावित कहा जा सकता है। कथाकार अपने जीवन के कटु एव मधुर अनुभव पात्रो के माध्यम से ही प्रकट करते हैं।

चरित्र-चित्रण की सार्थकता पात्रो पर ही अवलवित है एव वातावरण की सृष्टि को सफल बनाने वाले ये विविध पात्र ही तो है। पात्रो की विविधता कथावस्तु मे वैविध्य लाती है और रोचकता मे नवीनता समुत्पन्न करने का श्रेय इन पात्रो को ही है। कथाओ के ही लिए पात्रो की आवश्यकता नही होती है अपितु महाकाव्य, खडकाव्य, नाटक, उपन्यास आदि साहित्य की विविध विधाओ के लिए भी पात्रो की सतत आवश्यकता अपरिहार्य है। कल्पना के माध्यम से जो कथाओ मे पात्रो की विशिष्ट सृष्टि की जाती है अथवा उनमे (पात्रों मे) जो वर्गगत विशेषताओ का उल्लेख किया जाता है वह कथा की चारित्रिक विकास-गरिमा को मुखर करता है। पात्र-कथात्मक साहित्य का अन्यतम तत्व, एव चरित्र वे व्यक्ति हैं जिनके द्वारा कथा की घटनाएँ घटती है

अथवा जो उन घटनाओ से प्रभावित होते है। इन्ही व्यक्तियो के क्रिया-कलाप से कथानक और कथावस्तु का निर्माण होता है। अत भले ही किसी कृति मे घटनाओ की वहुलता और प्रधानता हो, पात्रो या चरित्रो का उसमे अभाव नही हो सकता। कथा की कल्पना मे ही पात्रो की विद्यमानता निहित है।

कथा के पात्रो को किस प्रकार उपस्थित किया जाय, यह कलाकृति के रूप लेखक की रुचि तथा योग्यता और उसकी कृति के उद्देश्य पर निर्भर है। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि मे पात्रो के प्रयोग, अर्थात चरित्र चित्रण के अपने-अपने ढग और विधान होते है। सव मिलाकर पात्रो का चरित्र–चित्रण तीन प्रकार से हो सकता है (१) पात्रो के कार्यो के द्वारा (२) उनकी वातचीत के द्वारा तथा (३) लेखक के कथन और व्याख्या द्वारा।

कथा की घटनाएँ तो प्राय पात्रो के स्वभाव और प्रकृति से ही प्रसूत होती है। उसके वातावरण या देश-काल का निर्माण चरित्रो को स्वाभाविकता और वास्तविकता प्रदान करने के लिए ही किया जाता है। कथनोपकथन धटनाओ से भी अधिक चरित्र को ही व्यजित और प्रकाशित करता है तथा कथा के उद्देश्य की महत्ता भी चरित्र मे ही निहित होती है।[1]

जैन कथाओ मे जिस सार्वभौतिकता एव विश्व कल्याण की विशद भावना को अपनाया गया है उसकी परिधि इतनी विशाल है कि ससार के समस्त प्राणियो का इसमे समावेश हो सकता है। जैम-धर्म जीवमात्र का हितकारी है। वह विश्व के प्रत्येक प्राणी को सुखी देखना चाहता है और यथा-शक्ति उसे सन्मार्ग का पथिक वनाना चाहता है।

इन कथाओ मे देव, असुर, मानव, साधु-सन्यासी, दैत्य, दानव, राजा रानी, विद्याधर, धनिक, दीन, पशु पक्षी, कीट पतगादि सव पात्र वनकर आए है। यदि देवता अपने विशिष्ट वैभव से युक्त है तो असुर भी अपनी आसुरी भावनाओ एव कामनाओ से परिपूर्ण दिखाये गए है। तोता, मैना, काग, कोकिल, वक, हस मयूर, गृद्ध आदि नभचर यदि इन कथाओ मे अपनी वेदना की अभिव्यक्ति करते है तो गाय, बैल, घोडा, वन्दर, सिह, मृग, व्याघ्र, सूकर, शृगाल, गज, भेडिया आदि भी मुनियो के उपदेशो को सुनकर प्रभावित होते है तथा अपने कुकृत्यो पर पश्चात्ताप करने लगते है। क्रूर वन्य पशु भी धर्मोपदेश के श्रवण से देव-योनि मे मरकर उत्पन्न होते है और अपनी जीवन यात्रा को सफल वनाते है। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्रो के साथ-साथ अरण्य-

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग १ पृष्ठ ४८८

वासिनी कई जातियो के प्रमुख व्यक्ति भी इन कथाओ के पात्र वने है और उन्होने साधना करके एक पुनीत आदर्श को समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। मेढक सा साधारण प्राणी भी इन कथाओ के माध्यम से शिष्ट जनो का प्रिय बनता है और अपनी भक्ति-भावना के सहारे मृत्यु का वरण कर स्वर्गवासी देव की अनुपम वैभव वशालिता को प्राप्त करता है। शृगाल रात्रि-भोजन का परित्याग कर शिथिल मानव-समाज के लिए एक चेतावनी देता है।

मरणासन्न सुग्रीव बैल पच नमस्कार मन्त्र को सुनकर अपनी भावना को पुनीत बनाता है और वृषभ शरीर का त्याग कर राजा छत्रछाया की रानी श्रीदत्ता की गोद मे वृषभध्वज नामक पुत्र के रूप मे वाल सुलभ क्रीडाएँ करता है। (देखिए सुग्रीव बैल की कथा, पुण्याश्रव कथाकोप पृष्ठ ७८)

साधारणत- कथाओ के पात्रो का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है.—

(१) ऋषि-मुनि (२) राजा-रानी (३) सेठ-सेठानी (४) देव-दानव (५) विद्याधर (६) अरण्यवासी-आदिवासी (७) मानव (विभिन्न जातियो के नर-नारी) (८) पशु-पक्षी (९) कीट-पतगादि (१०) देवी-देवता (११) वेश्या (१२) चोर डाकू (१३) विविध।

(पात्रो के सन्दर्भ मे वेश्याओ, राजाओ एव ऋषि मुनियो की विशेप चर्चा की गई है।)

प्राय देखा जाता हे कि कुपात्र भी जीवन की विषम यातनाओ को सहता हुआ कथा के अन्त मे प्रायश्चित्त अथवा धर्म-साधना की पावन आग मे अपने दुष्कृत्यो या दुर्भावनाओ को दग्ध करके अपने आप को सत्पात्र के रूप मे प्रस्तुत करता है। जैन कथाओ की यह विशेपता है कि इनमे चित्रित दुष्ट पात्र भी शिष्ट वन जाते हे। ये पात्र अपने कथनो के माध्यम से अपनी चारित्रिक विशेपताओ को प्रकट करते हे एव जीवन की शुभाशुभ गतिविधियो को सहज रूप मे समाज के सन्मुख अभिव्यजित कर देते हैं।

जैन कथाओं में यथार्थवाद एवं आदर्शवाद

यथार्थवाद एव आदर्शवाद दोनो एक दूसरे के पूरक है। यथार्थवाद ही आदर्शवाद की उपयोगिता को सिद्ध करता है और आदर्शवाद यथार्थवाद की प्रयोजनशीलता को प्रमाणित कर अपने अस्तित्व को सफल बनाता है।

यथार्थवाद के अभाव मे आदर्शवाद निस्सार प्रतीत होता है और वह अपनी गरिमा खो बैठता है। इसी प्रकार आदर्शवाद के प्रति जन-मानस मे तभी आकर्षण उत्पन्न होता है जब वह यथार्थवाद की कटुता से बेचैन हो उठता हे। जो श्यामता और श्वेतता मे पारस्परिक सम्बन्ध है वही इन दोनो मे परिलक्षित होता है। इन दोनो को एक दूसरे का विरोधी कहना वस्तुत उचित नही है।

"यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट चिन्तन-पद्धति है जिसके अनुसार कलाकारो को अपनी कृति मे जीवन के यथार्थ रूप का अकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण आदर्शवाद का विरोधी-माना जाता है पर वस्तुत तो आदर्श उतना ही यथार्थ है, जितनी कि कोई भी यथार्थवादी परिस्थिति। जीवन मे अयथार्थ की कल्पना दुष्कर है। किन्तु अपने पारिभाषिक अर्थ मे यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियो के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्राय सदैव मनुष्य की हीनताओ तथा कुरूपताओ का चित्रण करता है। यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुन्दर अश को छोडकर असुन्दर अश का अकन करना चाहता है। यह एक प्रकार से उसका पूर्वाग्रह है।

साहित्य मे आदर्श शब्द का प्रयोग दर्शन अथवा राजनीति की भाँति किसी रूढिगत अर्थ मे नही किया जाता। साहित्य का आदर्शवाद मानव-जीवन के आन्तरिक पक्ष पर जोर देता है। जीवन के दो पक्ष है आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक पक्ष मे मानसिक सुख, प्रसन्नता, परितोष, आनन्द आजाते है। बाह्य पक्ष मे ऐश्वर्य, वैभव तथा भौतिक उन्नति का स्थान है। आदर्शवादी साहित्यकार का विश्वास है कि मनुष्य जब तक आन्तरिक सुख प्राप्त नही करता, उसे वास्तविक आनन्द की उपलब्धि नही हो सकती। मानव की चेतना तब तक भटकती रहेगी, जब तक वह शाश्वत, चिरतन सत्य अथवा आनन्द नही प्राप्त कर लेता। इस प्रकार आदर्शवाद मानव-जीवन की आन्तरिक व्याख्या करता है। उसकी उच्च सभावनाओ के प्रकाशन मे तत्पर होता है। वह उन मानव-मूल्यो को ग्रहण करता है, जो कल्याण-कारी है, शुभ है, सर्जनात्मक है।

आदर्शवादी साहित्यकार भाव और कला की महत्तर ऊँचाइयो पर जाने का प्रयास करता है। अन्तर्मुखी होने के कारण कभी-कभी उसकी चेतना आध्यात्मिक, यहाँ तक कि रहस्यवादी हो जाती है।'[1]

जैन कथाओ मे यथार्थवाद का चित्रण विषाक्त वातावरण की सृष्टि के लिए नही किया गया है और न मानवीय विकृतियो की कुत्सित अनुभूतियो की रोचकता के हेतु उभारा गया है। मानव को प्रबुद्ध करने के लिए ही यथार्थवाद का सहारा लेकर कथाकारो ने उसे एक सभाव्य आदर्शवाद की ओर बढने के लिए सदैव प्रोत्साहित किया है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा का पूर्ण विकास हमे जैन-कथाओ मे प्राप्त होता है। नारकीय जीवन कितना वेदना-पूर्ण है, पशु-गति की कितनी भयावह विभीषिकाएँ है, धनिक वर्ग कितना निर्मम होकर निर्धनो को सताता है, कामी पुरुष किस प्रकार उचिता-नुचित के भेद को भूल जाता है, लोभी कितनी निर्ममता से दूसरो के धन का अपहरण करता है, नारी की काम-वासना जब उद्दीप्त होती है, तब वह सदाचार की सीमा का किस प्रकार उल्लघन करती है, कामिनी व्यभिचारिणी बनकर किस रूप से वह पर पुरुष को आकर्षित करती है, आदि का चित्रण कथा-कारो ने बडी सजगता से किया है, लेकिन साथ ही साथ इस चित्रण को आदर्श-वाद की तूलिका से ऐसा मनोरम बना दिया है कि पाठक अथवा श्रोता कहानी को पढकर या सुनकर एक विशिष्ट प्रबोधन से स्वय को जागरुक

1 हिन्दी साहित्य कोष प्रथम भाग पृष्ठ १०३

वना लेता है। मुनि-निन्दा से मानव सतप्त होकर दुखी होता है लेकिन व्रतादि करके वह दुख से मुक्ति पाता है तथा अपने आगामी जीवन को परिष्कृत भी बनाता है। इस प्रकार, के विविध मोडो का दिग्दर्शन कथा कारो ने आदर्शवाद की प्रतिष्ठा के लिए निरन्तर किया है। पापोदय से यदि शरीर कुष्ठ रोग मे विकृत वनता है तो जिनेन्द्रदेव की भक्ति पूर्वक पूजा करने से तथा गधोदक लगाने से इस प्रकार के कठिन रोग भी नष्ट हो जाते है। इस प्रकार रोग के कारणो का उल्लेख करते हुए आदर्श वादी इन जैन कथाकारो ने रोग की मुक्ति के साधनो की भी चर्चा की है।

इस सदर्भ मे यह भी उल्लेख्य है कि एक ओर कथाकार ने मानव की निर्वलता को अकित किया है तो दूसरी ओर इसान की कर्मण्यता एव चारित्रिक पावनता को भी चित्रित कर मानव के दोनो रूपो को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस प्रयास मे मानवीय कमजोरियाँ परास्त होती हे और चारित्रिक दृढता अनेक सघर्षो के वीच सही वनती है। सुदर्शन सेठ की कथा मे एक तूलिका से वेश्या की उदीप्त काम वासना को गहरे रगो से रगा गया है तो दूसरी तूलिका के सहारे शरीर की अपावनता को चित्रित कर प्रवोधन का सहारा लिया गया है तथा तीसरी तूलिका से सुदर्शन मुनि की चारित्रिक दृढता को निखारा गया है। इस कथा के निम्नस्थ अश विचारणीय है—

वेश्या का यह प्रलाप सुनकर परम निश्चल और धीर-वीर सुदर्शन वोले—हेमुग्धे (मूर्खिणी) यह अपवित्र शरीर दुखो का घर वायु, पित्त, कफ इन त्रिदोषो से पीडित, कृमिकुल से परिपूर्ण और विनश्वर है। यह सासारिक भोगोपभोगो के अनुभव न करने के लिए नही है, किन्तु परलोक सिद्धि की सहायता के लिए है। अतएव इसे तपस्या मे ही लगाना चाहिए। ये सम्पूर्ण भोगोपभोग अविचारित रम्य और दुखान्त है। इनसे प्राणी को कभी सन्तोष की प्राप्ति नही हो सकती है। मोक्ष के अतिरिक्त अन्यत्र सुख नही हे, और वह तपस्या के विना प्राप्त नही हो सकता। सो हे मूर्ख अव तू इस दुष्कृत्य से अपने आपको वचा और कुछ अपना कल्याण कर।

यह सुनकर देवदत्ता ने यह कह कर कि 'यह सव पीछे करना और पीछे ही उपदेश देना, अभी वह समय नही है। सुदर्शन मुनि को अपनी सुकोमल शय्या पर लिटा दिया। परन्तु मुनि ने इस समय सन्यास धारण कर लिया और प्रतिज्ञा करली कि यदि इस उपसर्ग का निवारण हो जायेगा तो आहारादि ग्रहण करूँगा अन्यथा सर्वथा त्याग है। परन्तु वेश्या ने

उनका पिंड न छोडा। उसने तीन दिन तक काम विकारो की नाना चेष्टाएँ की परन्तु जगज्जयी काम को जीतने वाले सुदर्शन मुनि मेरु के समान सर्वथा निश्चल रहे। आखिरकार वेश्या लाचार और निरुपाय होकर रात्रि को उन्हे स्मशान भूमि मे लेजाकर कायोत्सर्ग पूर्वक स्थापन कर आई और अपने घर चली आई।

यहाँ सुदर्शन मुनि कठिन तपस्या के फल से केवल ज्ञान प्राप्त करके गध कुटी रूप समवसरणादि की विभूति से युक्त हुए। उनके केवल ज्ञान के अतिशय को देखकर व्यन्तरी सम्यग्दृष्टी हो गई और पडिता तथा देवदत्ता ने दीक्षा ग्रहण करली।" **पुण्यास्रव कथाकोष पृष्ठ १२१**

यथार्थवाद एव आदर्शवाद की इस चर्चा मे यह भी उल्लेखनीय है कि कथाकारो ने पीडित मानव की सन्तुष्टि के लिए जिस आदर्शवाद की स्थापना की है वह केवल कल्पित नही है अपितु मानवीय साधना के भीतर ही है।

जैन कथाओं में प्रकृति-चित्रण

प्रकृति और मानव का चिरतन साहचर्य है। अपने जीवन के प्रथम प्रभात मे इ सान ने प्रकृति के सुहावने दृश्य को देखा था एव जीवन की सध्या मे भी उसने प्रकृति से सान्त्वना प्राप्त की थी। यह प्रकृति ही तो मानव को कभी जननी के समान वात्सल्य देती है तो कभी प्रेयसी की भाँति उसे अनन्त प्यार प्रदान करती है। कभी शिक्षिका के सदृश यह प्रकृति विह्वल मानव को प्रवोधन देकर आश्वस्त करती है तो कभी अध्यात्मवाद की भावना को अपने क्षण भगुर रूप के माध्यम से सुदृढ बनाती है।

साहित्यकार को सतत प्रेरणा देने वाली यह प्रकृति ही है। इसकी सुखद गोद मे वैठकर काव्यकार चिरतन काव्य की सर्जना करता है और चित्र-कार प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर अपनी भावुक तूलिका प्राणवती बनाता है। प्रकृति की छाया मे निर्मित साहित्य ही सत्य, शिव, सुन्दर का प्रतीक बनता है।

हमारा प्राचीन समस्त साहित्य प्रकृति की रम्य रगस्थली मे ही रचा गया था। फलत उसमे प्रकृति के विविध रूपो का वडा ही मनोरम चित्रण हुआ है। प्रकृति के अनेक उपकरण इतने रमणीय है कि वे उपमान के रूप मे स्वीकृत हो चुके है। मृगो की छलागे किसे विमोहित नही करती है ? मयूरो का नृत्य सबको प्रमुदित कर देता है। मेघो की श्यामल घटाएँ बरबस भावुक मानस को सुखद स्मृतियो से भर देती है। इसी प्रकार कमलो से भरा

हुआ सरोवर दर्शक की आँखो को आनदित कर देता है। सुरभित पुष्प किस स्नेही की लालसा को मुखरित नही करते ?

पलाश के फूलो की दहकती लालिमा किस विरहिणी को उद्वेलित नही करती ?

डॉक्टर शान्ति स्वरूप गुप्त के शब्दो मे प्रकृति के साथ मानव का सम्बन्ध तभी से है जब से वह इस धरातल पर आया। शिशु के रूप मे उसने प्रकृति जननी की ही उन्मुक्त क्रीड मे नेत्रोन्मीलन किया, उसी की गोद मे उसने स्वच्छन्द विहार किया और अन्त मे उसी के वक्षस्थल पर वह चिर निद्रा मे सोता रहा। महादेवी वर्मा ने प्रकृति और मानव के सम्बन्ध पर विचार करते हुए लिखा है—"दृश्य प्रकृति मानव जीवन को अथ से इति तक चक्रवाल की तरह घेरे रही है। प्रकृति के विविध कोमल परुष, सुन्दर, विरूप, व्यक्त, रहस्यमय रूपो के आकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है इसका लेखा-जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी है। वस्तुत सस्कार-क्रम मे मानव जाति का भाव-जगत ही नही उसके चिन्तन की दिशाएँ भी प्रकृति से विविध रूपात्मक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियो से प्रभावित है।

यो तो धर्म, दर्शन, साहित्य और कला इन सभी मे प्रकृति-चित्रण को स्थान मिला है, किन्तु काव्य मे इसे सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि काव्य का रचयिता कवि साधारण मानव की अपेक्षा अधिक सवेदनशील होता है और वह प्रकृति के विभिन्न दृश्यो से बहुत शीघ्र और अधिक अभिभूत होता है।"[1]

जैन कथाकारो ने अपने धार्मिक सिद्धान्तो एव उपदेशो को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए प्रकृति के उपकरणो को विशेष रूप से अपनाया है। त्याग-वृत्ति की उपादेयता सिद्ध करने के लिए इन कथाकारो ने वृक्षो, मेघो सर-सरिताओ एव पुष्पो के उदाहरण दिये है। इसी प्रकार परोपकार की भावना को जाग्रत करने के लिए इन कथाओ मे गाय, पवन, आकाश, मेघ, कानन, पर्वत आदि की जीवन-गाथा का सकेत किया गया है। जीवन क्षण भगुर है—इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए फूले हुए वृक्ष एव शुष्क तरु को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। कही-कही पर कथा की रोचकता का

---

1 साहित्यिक निबध पृष्ठ ४८२

बढाने के लिए प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण इन कथाकारो ने बडी भावुकता मे किया है । सामान्य रूप से प्रकृति का चित्रण इन कहानियो मे निम्नस्थ रूपो मे हुआ है—(१) आलम्बन रूप मे (२) मानवीकरण के रूप मे (३) पृष्ठभूमि के रूप मे (४) उपदेशिका के रूप मे (५) उद्दीपन रूप मे (६) अलकार प्रदर्शन के रूप मे (७) प्रतीकात्मक रूप मे (८) बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप मे (१०) दूतिका के रूप मे । यहाँ कुछ उद्धरण दिये जा रहे है जो प्रकृति के विविध रूपो को प्रस्तुत करते है तथा यह भी बताते है कि भावुक कथाकार प्राकृतिक दृश्यो से किस प्रकार प्रभावित हुआ है, जैन कथाओ मे पशु-पक्षियो का मानवीकरण एक विशिष्ट उद्देश्य का परिचायक है । यह मानवीकरण धार्मिक महत्व को प्रतिपादित करता है । यहाँ गाय, बैल, गज, सिंह, शृगाल, मयूर, हस, शुक, सारस, मैना आदि मुनियो के उपदेशो से प्रभावित होकर सन्यास धारण करते है, मास-भक्षण का परित्याग करते है, रात मे जल पीना छोडते है, विद्वेष को भूलते है एव जाति स्मरण से अपने दुष्कृत्यो के लिए पश्चात्ताप करके स्वजीवन को सुधारने का पूर्ण प्रयास भी करते है ।

वसन्त वर्णन—

"हरिवंश पुराण" पृष्ठ क्रमाक १७० से १७३ तक

कदाचित वसत ऋतु का आगमन हुआ । वसत के प्रभाव से चारो दिशाओ मे एक विलक्षण शोभा नजर आने लगी । उस समय वनमाला नवीन पुष्प और पल्लवो की लालिमा से व्याप्त हो गई थी इसलिये उनसे वसत ऋतु अतिशय रमणीय जान पडती थी ।

मनुष्यो के मन को हरण करने वाले आम के वृक्ष उस समय लाल-लाल नवीन पल्लवो से व्याप्त हो गये थे । उनसे ऐसा जान पडता था मानो राजा सुमुख को वन देवी की प्रीति के लिये सूचना दे रहे है ।

किंशुक (ढाक) के वृक्ष अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला के समान चौतर्फा रक्त हो गये थे, उनसे ऐसा जान पडने लगा मानो वियुक्त हुये अनुरक्त स्त्री-पुरुषो की उपशात विरह ज्वाला फिर से धधक उठी है ।

उस समय अशोक वृक्ष नवीन युवा की तुलना कर रहा था । क्योकि युवा के शरीर पर जिस प्रकार रणन्नूपुरचारुस्त्रीकोमल चरणताडित. पल्लवारुहः झनकार शब्द करती हुई पायलो से मनोहर स्त्री के अतिशय कोमल चरणो के स्पर्श से पल्लवो के समान रोमाच खडे हो जाते है, उसी प्रकार अशोक वृक्ष भी झनकार शब्दो से युक्त पायलो से शोभित स्त्री के कोमल चरणो का स्पर्श करते ही नवीन-नवीन पल्लवो से लहलहा गया था ।

बकुल वृक्ष (मोलसिरी) स्त्रियो के ग्रखड मद्य के कुल्लो से फूल गया था। इसलिये उसे देख प्रमद जनो को परम ग्रानद होता था।

जो मनुष्य उस समय सुखी थे। ग्रपनी ग्रपनी वल्लभाग्रो से सयुक्त थे, उन्हे तो ग्रपने ऊपर गु जार शब्द करते हुवे भ्रमरो से कुरवक वृक्ष परम ग्रानन्द देता था, किन्तु जो दु खी विरही थे उन्हे दु ख कर। ग्रपने ग्रर्थ को कु-खोटे रोना चिल्लाना रूप रवक-शब्द कराने वाला चरितार्थ करता था।

उस समय चौतर्फा फूले हुये तिलक वृक्षो ने ग्रपनी शोभा द्वारा पटल जाति के वृक्षो की सुगन्धी से व्याप्त वन लक्ष्मी रूपी बनिता को पुण्यवती बना दिया था।

जिस प्रकार हस्तियो के दमन करने के लिते केशर (गर्दन के बाल) से शोभित सिह कूदते फिरते हैं, उसी प्रकार वसन्त ऋतु मे खिले हुवे नाग वृक्षो को दबाने के लिये ही मानो सिह केशर जाति के वृक्ष खिल उठे थे।

जिस प्रकार कोई पुरुष चिरकाल के वियोग से कृश ग्रपनी वल्लभा को ग्रालिगन कर पुष्ट एव पुण्यवती (रजोधर्मवती) कर देता है उसी प्रकार वसत ने चिरकाल से विमुख ग्रतएव सूखी हुई ग्रपनी मालती रूपी वल्लभा को ग्रपने मिलाप से प्रफुल्लित ग्रौर पुष्पो से व्याप्त कर दिया था।

उस समय ग्रतिशय रक्त कठ ग्रौर ग्रधरो की शोभा से मडित एव झूलने के ग्रतिशय प्रेमी ग्रनेक स्त्री पुरुष झूला पर बैठकर हिंडोल नामक राग मे मनोहर गीत गाते थे।

कोई कोई स्त्रियो के प्रेमी मनुष्य बसत ऋतु के ग्रनुकूल भूषण वस्त्र पहन कर बगीचे ग्रौर वनो मे जाते ग्रौर बडी प्रीति से मद्यपान करते थे।

वन मे हरिण पहिले दूबघास का स्वय ग्रास्वादन करते ग्रोर पीछे उसे हरिणी को देते। हरिणी भी उसका ग्रास्वादन कर हिरण को देती सो ठीक है कि ग्रपने प्रिया की सू घी हुई भी वस्तु परम ग्रानन्द देती है।

उस समय मदोन्मत्त हाथी सल्लकी वृक्ष के सुन्दर पल्लवो के खाने मे ग्रतिशय लालायित ग्रपनी प्रेयसी हथिनी को ग्रपने मुख से चु बन करते ग्रौर उन्हे चु बन जन्य सुख मे मस्त कर देते थे।

नूतन पुष्पो मे स्थित मधु को पीते हुवे भ्रमर भ्रमरी इधर उधर शब्द करते हुवे फिरते थे एव बडी लालसा से एक दूसरे का ग्राघ्राण ग्रौर चु बन कर ग्रानन्दित होते थे।

उस समय कोकिला इधर उधर कुहू कुहू मनोहर शब्द करती थी उससे

ऐसा जान पडता था मानो अपने समान सुरीले कठो से भूषित रमणियो का गान सुनकर वे उनके जीतने की इच्छा से ही शब्द कर रही है।

इस प्रकार वसत राजा के उदित होने पर राजा सुमुखी का भी विलासी मन वन विहार के लिये उत्सुक हुआ सो ठीक ही है जिस वसत के प्रभाव से भ्रमर कोयल आदि क्षुद्र जन्तु भी मस्त हो नाना गान गाने लगते है तो मनुष्यो की तो बात ही क्या है ?

प्रथम ही उसने उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण पहिने पश्चात् वह भले प्रकार सजाये गये किसी अतिशय उन्नत हाथी पर सवार हो सज धज कर वन की ओर चल निकला। उस समय उसके मस्तक पर पूर्ण चन्द्रमा के समान अतिशय स्वच्छ छत्र फिरता था जिससे सूर्य की प्रभा दब रही थी।

नाना प्रकार के जलो से पूर्ण समुद्र के समान अनेक राजाओ से व्याप्त, वदीगणो से स्तुत राजा सुमुखी राजमन्दिर से निकल राजमार्ग पर अवतीर्ण हुवे। बसत ऋतु के समान सदा से प्रजा के मन मे विराजमान राजा सुनुख को देखने के लिये नगर की नारियो मे बडा कोलाहल मच गया।

चारो ओर वर्धस्व, जय, नद यही ध्वनि सुनी पड रही थी। हाथो को जोडे हुवे अतिशय व्याकुल हो स्त्रियाँ अपने नेत्र रूपी अजलियो से सुमुख के रूप का पान करने लगी।

प्रकृति-अलंकार

स्त्रियो के मध्य मे एक अतिशय मनोहर साक्षात् रतिके समान स्त्री बैठी थी। अचानक ही उस पर राजा की दृष्टि पड गई। उसका मुख चन्द्रमा के समान था। नेत्र कमल के समान थे। दोनो ओष्ठ बिवाफल सरीखे और कठ शख अनुरूप था। उसके स्तन चक्रवालो की उपमा को धारण करते थे। कटिभाग अतिशय कृश था। नाभि अत्यन्त गहरी थी। दोनो जघन सुघटित थी। नितव कुदरूफल से तुलना करते थे और दोनो चरण, विशाल उरु, सुन्दर जघा एव पार्ष्णियो से अतिशय शोभायमान थे।

राजा सुमुख उसपर अति आसक्त हो गया और लालसा पूर्वक उस पर गिरी हुई अपनी चंचल दृष्टि को जरा भी न रोक सका।

उसके मन मे सहसा इस बात की चिता हुई कि मुग्ध हरिणी के समान नेत्रो से शोभित यह रमणी किसकी आज्ञाकारिणी स्त्री है। अतिशय सुन्दर यह बराबर अपने रूप रूपी पाश से मेरे मन को खीच रही है।

यदि इस जन्म मे मैने हृदय को आनन्द देने वाली इस रमणी के

साथ विलास न किया तो मेरा यह ऐश्वर्य व्यर्थ है। यह सुन्दर रूप और नवीन यौवन भी किसी काम का नही।

चाहे यह समस्त लोक परस्त्री सेवन करने के कारण एक ओर हो सर्वदा के लिये विरोधी हो जाय, परन्तु मेरा जो चित्त परस्त्री मे आसक्त हो गया है, उसे मै रोक नही सकता आदि।

'शरद ऋतु वर्णन' पृष्ठ क्रमाक १८६ से १८७ हरिवंश पुराण'—

कदाचित वर्षाकाल के व्यतीत हो जाने पर शरद ऋतु का आरम्भ हुआ। उस समय शरद ऋतु सर्वथा सुन्दर स्त्री की उपमा धारण करती थी। क्योकि स्त्री के जैसा मुख होता है वह कमल रूपी मुख से शोभित थी। स्त्री जैसे अधर पल्लवो से मडित रहती है यह भी बधूक जाति के मनोहर पल्लव रूप अधरो से शोभित थी। स्त्री जैसे श्वेत चमरो से अलकृत रहती है यह भी विकसित कास के वृक्ष रूपी शुभ्र चमरो से युक्त थी। स्त्री जैसे वस्त्रो से वेष्टित रहती है यह भी निर्मल जल रूपी वस्त्रो से वेष्टित थी।

उस समय धूम्र के समान काली मेघ पक्ति नजर न पडती थी। उससे ऐसा जान पडता था मानो श्वेत वर्ण गौओ के उन्नत शब्दो ने उसके शब्दो को प्रच्छन्न कर दिया था। इसलिए वह लज्जित हो छिप गई है।

वर्षाकाल मे मेघमडल से आवृत होने के कारण दिशाओ मे सूर्य के पाद (किरण) नही फैल पाते थे, परन्तु इस समय मेघ का आवरण विल्कुल नष्ट हो चुका था। इसलिये उस सूर्य ने अपने पैर (किरण) सब ओर पूर्ण रीति से फैला रक्खे थे।

उस समय मेघ रूपी नितबो से झरते (गिरते) हुवे जल रूपी चित्र विचित्र वस्त्रो से मडित, भवर रूपी नाभि से रमणीय, मीन रूपी नेत्रों से मनोहर, फेन रूपी चूडाओ से अलकृत, तरग रूपी विशाल भूजाओ से भूषित, नदी रूपी रमणियाँ क्रीडा काल मे भगवान के मन को भी हरण करती थी।

लहर रूपी भ्रुकुटियो से शोभित मीन के समान चचल कटाक्षो से युक्त कामी पुरुषो के मनोहर अलापो के समान मत्त भोरे और हसो के शब्दो से रम्य विकसित कमलो की पराग रूपी अगराग को धारण करने वाली सरसी रूपी स्त्रिया रतिकाल मे भाग्यवान को अतिशय अनुरक्त करती थी।

शालि क्षेत्रो मे सुगधित शालि वृक्ष फलो के भार से नम्रीभूत हो गये और उन्ही क्षेत्रो मे कमल भी प्रफुल्लित हो गये। उनमे ऐसा प्रतीत होता था मानो सुगध के अतिशय लोलुपी कमल और शालिफन्न शरीर से शरीर मिलाकर चिरकाल तक एक दूसरे की सुगध सू घना चाहते है।

कदव वृक्ष वर्षाऋतु मे पुष्पित होते है । इसलिये शरदऋतु के प्रारम्भ मे जव कदव धूलि से धूसरित विचारे भोरो को कदव पुष्पो का मधु न मिला तो वे मत्त हाथियो के मद की गध देने वाले सप्तच्छद वृक्षो से ही मन वहलाने लगे ।

वर्षाकालीन संध्या का वर्णन:—

वर्षा काल की सध्या का समय था । मेघ मडल ने अपने अधकार-पूर्ण वातावरण मे सूर्य के सम्पूर्ण प्रताप को ढक लिया था । उसने अपनी घनी और काली चादर से आसमान को आवृत कर लिया था । यह उसके जलदान का समय था । मेघो के हृदय की उदारता का स्रोत आज अनिवार्य गति से फूट पडा था । वे भीषण गति से भूमडल को आर्द्र वनाने का सकल्प करने लगे । अरे यह क्या अपने प्रचुर दान की सीमा का आज वे उल्लघन ही कर गए ?

—महात्मा सजयत सुदृढ तपस्वी नामक कथा से

रात्रि-वर्णन

उसी समय सूर्य पश्चिम समुद्र मे जाकर डूव गया, मानो आकाश जगल मे चलते हुए थककर उसने स्नान करने के लिए समुद्र मे डुवकी लगाई है । पश्चिम दिशा का उपभोग करने को जाते हुए सूर्य ने सध्या वादल के छल से उसके पश्चिम दिशा के वस्त्र खीच लिए हो—ऐसा मालूम होने लगा । पश्चिस दिशा पर छाई हुइ अरुण मेघो की परम्परा ऐसी जान पडने लगी मानो अस्तकाल मे सूर्य को छोडकर तेज जुदा रह गया है । नवीन रागी सूर्य, अव नवीन राग वाली पश्चिम दिशा का सेवन करने लगा ।

जैन रामायण छटा सर्ग

जैन कथाओं की रचना प्रक्रिया

जैन कहानियो का रचना-विधान बडा ही सरल सरस एव आकर्षक है। इनमे न शाब्दिक काठिन्य है और न भावो की दुर्बोधता। ये कथाएँ सामान्य जनता के लिए लिखी गई थी अत इन्हे इतना सुबोध बनाया गया था कि अशिक्षित जन-समुदाय भी इसे समझ सके और मनोरजन के साथ-साथ जीवन की विषमता से भी अवगत हो सके। ये समस्त कहानियाँ एक विशिष्ट लक्ष्य को लेकर निर्मित हुई थी और आचार-व्यवहार, प्रथा-परम्परा और जीवन-जगत् को अपने आकार मे सभालती हुई आज भी जीवित है। समय-समय पर इनका स्वरूप परिवर्तित हुआ और स्वरो मे बदलाव आया, लेकिन प्रबोधन की भावना अमिट रही।

कतिपय कथाओ को छोडकर प्राय समस्त कथाएँ ऐसी है जिनमे प्रस्तावना का अभाव है। साधारणतया कथा का प्रारम्भ किसी नगर अथवा ग्राम के नाम के उल्लेख से होता है तथा साथ ही साथ किसी विशिष्ट शासक, अथवा प्रधान पुरुष का भी सकेत किया जाता है। नृपति के नामोल्लेख के साथ उसकी रानी एव राजकुमारो की भी प्रारम्भिक चर्चा करदी जाती है। बहु सख्यक कहानियाँ ऐसी है जिनमे साधारण व्यक्तियो की प्रधानता रहती है और कथाओ का प्रारभ व्यक्ति विशेष की साधारण स्थिति के परिचय के साथ किया जाता है। कुछ कथाएँ ऐसी भी है जिनका आरम्भ किसी प्रधान घटना की पूर्व पीठिका से होता है। कथा के आरभ मे विशिष्ट पात्र के उल्लेख के

साथ उसकी पत्नी के नाम का भी सकेत कर दिया जाता है। कथा के प्रारभ मे मगलाचरण के रूप मे श्री जिनेन्द्र देव की स्तुति परक कुछ शब्द कह दिये जाते है। और अन्त मे (कथा की समाप्ति मे) साराश के रूप मे विशिष्ट लक्ष्य की भी चर्चा करदी जाती है जिससे कि पाठक अथवा श्रोता सहज ही मे उस प्रयोजन को समझ सके जिसके लिए पूरी कथा की सृष्टि की गई है। उदाहरण के रूप मे यहाँ दो कथाओ का साराश उद्धृत किया जा रहा है —

(१)

पूजन का ऐसा महत्व है कि अत्यन्त मूर्ख, व्रत-रहित शूद्र की कन्याएँ भी भगवान् के मन्दिर की देहली पर केवल फूल चढाने के कारण देव-गति को प्राप्त हो गई। फिर यदि सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावक अष्टद्रव्य से और भाव सहित भगवान् की पूजा करे तो इन्द्र-महेन्द्र की पदवी को क्यो न प्राप्त होवे ? अवश्य ही होवे। इसलिए हम सबको प्रतिदिन भक्ति भाव से जिन पूजा करनी चाहिये। (माली की लडकियो की कथा, पूजाफल वर्णनाष्टक पुण्यास्रव कथाकोष पृ ३)

(२)

देखिए ! मरण-काल मे एक चोर भी बिना विचारे अथवा बिना महत्व जाने ही नमस्कार मत्र के उच्चारण से देव-पद को प्राप्त होगया, यदि अन्य सदाचारी पुरुष शुद्ध मन से इस मत्र का पाठ करे तो क्यो न स्वर्गादिक सुखो को प्राप्त होवे ? अवश्य ही होवे। (दृढ सूर्य चोर की कथा—पुण्यास्रव कथाकोष, पृ० १०७)

मगलाचरण एव साराश की प्रवृत्ति प्राय समस्त पुरातन जैन कथाओ मे दृष्टव्य है। लेकिन आज के कतिपय कहानीकारो ने प्राचीन जैन कथाओ की कथावस्तु के आधार पर कुछ कहानियाँ लिखी है। उन नव-निर्मित कहानियो मे न मगलाचरण का सकेत उपलब्ध है और न साराश देने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। इसका कारण यही है कि आधुनिक कहानी का रचना-विधान पाश्चात्य कहनी-कला से अत्यधिक प्रभावित है। इस सन्दर्भ मे डॉ० जगदीशचन्द्र जैन द्वारा लिखित दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ भी उल्लेख्य है।

कथाओ मे रोचकता लाने के हेतु तथा इन्हे प्रभावोत्पादक बनाने के लिये कथाकारो ने सूक्तियो, सुभाषितो, दृष्टान्तो, एव उपकथाओ का भी पर्याप्त मात्रा मे प्रयोग किया है। इनके (सूक्तियो एव सुभाषितो के) माध्यम से कथाओ मे सन्निहित लक्ष्य की पूर्ति हो जाती है और साथ ही साथ जीवन के

एक ऐसे विशिष्ट तत्व से भी पाठक-श्रोता परिचित हो जाते हैं जो सामाजिक, धार्मिक एव राजनीतिक जीवन मे विशेष उपयोगी सिद्ध हो सकता है। वेश्या के सम्बन्ध मे कहा गया है कि—"वेश्या धन का अनुभव करती है, पुरुष का नही। धनहीन पुरुष कामदेव के समान हो तो भी वेश्या उससे प्रीति नही लगाती है।" (अर्द्धदग्ध पुरुष और बकरे की कथा-पुण्यास्रव कथाकोष, पृ० ८५)।

इसी प्रकार गुरु की महिमा वे विषय मे एक सूक्ति कही गई है—कि एक अक्षर, आधापद अथवा एक पद के देने वाले गुरु के उपकार को भी जो भूलता है वह पापी है, फिर धर्मोपदेश देने वाले गुरु के विषय मे तो कहना ही क्या है ? (पुण्यास्रव कथाकोष पृ० ६३)

कथा-वस्तु की सुन्दरता मे अभिवृद्धि करने के लिए अथवा कहिए परम्परागत प्राप्त कथा-प्ररूढियो की व्यापकता एव सार्थकता सिद्ध करने के लिए कहानियो मे यत्र-तत्र कथानक-रूढियो का भी प्रयोग किया गया हे। इस सदर्भ मे 'जैन-कथाओ मे प्ररूढियाँ' शीर्षक अध्याय द्रष्टव्य है। कथाओ की कथावस्तु को विस्तार देने के लिए तथा कथा-शिल्प को आकर्पक बनाने के हेतु कही-कही कथाकारो ने अलौकिक तत्वो को भी अधिक प्रश्रय दिया है। इस विषय मे 'जैन कथाओ मे अलौकिक तत्व' शीर्षक अध्याय अवलोकनीय है।

सामान्यत कथाओ की शिल्प प्रक्रिया साधारण ही होती है। इसमे सीधा सादा कथानक होता है और इसका प्रारम्भ 'एक समय की बात है— अमुक नगर मे एक सेठ रहता था,' 'एक गाव मे एक माली रहता था,' "जम्बूद्वीप—पूर्व विदेह, आर्य खण्ड–अवन्ती देश मे सुसीमा नामक एक नगरी है, "कुतल देश के तेरपुर नगर मे नील और महा नील नाम के दो राजा थे— "मगध देश के राजगृह नगर मे एक उपश्रेणिक राजा राज्य करता था"–आदि वाक्यो से होता है। इन सामान्य कथाओ मे केवल एक ही कथानक रहता है और धार्मिक अथवा सामाजिक तथ्य को सरल रीति मे प्रतिपादिन कर दिया जाता है। लेकिन कई ऐसी भी कथाएँ है जिनमे प्रधान कथावस्तु के साथ कई अनेक उपकथाएँ गुम्फित रहती हैं जो प्याज के छिलको के समान अथवा कहिए केले की छिलका वली (दल) की भाति एक के वाद एक प्रस्तुत की जाती है। ऐमी कथाओ की रचना-विधि सामान्य कहानियो की तुलना मे कुछ जटिल सी प्रतीत होती है।

कतिपय कथाएँ ऐसी भी उपलब्ध होती है जिनका प्रारभ एक लघु प्रस्तावना से किया जाता है तथा प्रकृति वर्णन, राजवैभव-चित्रण, नागरिक सौन्दर्य चर्चा, नीति-सिद्धान्त-विवेचना, स्वर्ग-विलास-विभूति-दिग्दर्शन, चक्रवर्ती-वैभव-निरूपण, आदि के माध्यम से कथानक मे कई मोडो की कल्पना को साकार बनाया जाता है। ऐसी कथाओं की रचना-विधि एक विशद प्रकार की कही जा सकती है। कुछ ऐसी भी कथाएँ है जो राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर मे गौतम स्वामी द्वारा कही जाती है जिनमे कथा-श्रवण के फल का उल्लेख रहता है एव कथा की गरिमा से सलग्न व्रतादि का विधान बताया जाता है।

एक प्रकार की विशिष्ट कथाएँ और भी है जिनकी कथावस्तु सक्षिप्त मे प्रस्तुत की जाती है। इनका पूरा कथानक प्रश्नोत्तर मे ही समाप्त हो जाता है। एक रोग-पीडित अथवा दु खी पात्र किसो मुनिराज से पापोदय का कारण पूछता है और वे (मुनिराज) उसे पाप के उदय का हेतु बताते है। कथा पूरी हो जाती है। ऐसी कथाओ का शिल्प-विधान शरद-कालीन सरिता के प्रवाह के समान बडा ही सरस और सीधा होता है। बोल चाल की भाषा ही ऐसी कथाओ मे प्रयुक्त होती है एव छोटे-छोटे वाक्यो के द्वारा कथा का प्रारभ होता है और समाप्ति की जाती है—

दुर्गन्धा ने वदना करके मुनि से पूछा—मैं किस पाप के उदय से ऐसी दुर्गन्ध युक्त हुई हूँ ? मुनि ने कहा—सोरठ (गुजरात) देश मे एक गिरिनगर है। उसका राजा भूपाल और रानी स्वरूपवनी थी। उसी नगर का एक सेठ गगदत्त और उसकी स्त्री सिंधुमती थी। एक समय जब वसन्त ऋतु अपनी निराली छटा और अपूर्व शोभा दिखा रहा था राजा ने कीडा करने और वसन्त की शोभा देखने का विचार किया। इत्यादि (पुण्यास्रव कथा कोष पृष्ठ २५)

ये कथाएँ गद्यात्मक, पद्यात्मक, एव गद्यात्मक पद्यात्मक (मिश्रित) इस प्रकार तीन प्रकार की होती है। इन तीनो प्रकार की कथाओ का शिल्पविधान पृथक-पृथक होता है। गद्यात्मक कथाओ के मध्य मे कथाकार समुचित एव भावपूर्ण पद्य रखकर रचना-प्रक्रिया को विशेप आकर्षक बनादेते है। लोकोक्तियो एव मुहावरो के प्रयोग से भाषा की व्यजना शक्ति अधिक बलवती बन जाती है। मानव-हृदय की गहन अनुभूतियो को चित्रित करने-वाली ये कथाएँ कभी दाम्पत्य-प्रेम को प्रदर्शित करती है तो कभी आध्यात्मिक भावना को चित्रित करती हैं। प्रेम, घृणा, हिंसा, प्रतिहिसा, वात्सल्य, क्रोध,

मैत्री, विश्व-बन्धुत्व आदि मानवीय भावनाओ के प्रदर्शन मे सफल इन जैन कथाओ की रचना-प्रक्रिया बडी विशद, भाव-पूर्ण, वैविध्य-परिपूर्ण, सहज एव आकर्षक है। अनेक कहानियो की रचना-प्रक्रिया मे अलकारादि प्रयोग हुए है और फलत उनकी भाषा मे रमणीयता एव मधुरिमा का अधिक समन्वय हो गया है। ऐसी रचना-प्रक्रिया से आवद्ध कथाओ का साहित्यिक महत्व विशेषत उल्लेखनीय है। पुराणादि मे गुम्फित कथाओ मे अनेक ऐसी कहानियाँ है जो विशुद्ध मनोवैज्ञानिक कही जा सकती हैं। उनकी शिल्प मे समासान्त पदावली का वाहुल्य है, सस्कृत शब्दो की प्रचुरता है एव लम्बे-लम्बे वाक्य है, जिनसे मनोवैज्ञानिक तथ्यो को निरूपित किया गया है। इस प्रकार विभिन्न कथाओ की रचना-विधि मे वैविध्य होता है, जो स्वाभाविक ही है।

वस्तुत कथा-रचना-प्रक्रिया कथाकार की कला-सौन्दर्य-प्रियता की परिचायिका है। जिस प्रकार वास्तुकला मे प्रवीण शिल्पकार अपने कौशल से नवीनता, आकर्षण, एव विशिष्टता को साकार बनाता है उसी प्रकार कथाकार अपने नियोजन-कौशल से उपलब्ध कथावस्तु आदि से कहानी मे एक ऐसी विलक्षणता को चित्रित करता है जिसे देखकर पाठक-समुदाय विमुग्ध हो जाता है। एक ही कथावस्तु को आधार बनाकर जव विभिन्न कथाकार अपनी-अपनी लेखनी से कहानी को भिन्न-भिन्न रूपो मे अकित करते है तभी तुलनात्मक दृष्टि से रचना-शिल्प की उत्कृष्टता का अध्ययन किया जा सकता है। प्रबुद्ध एव कल्पना-शील चित्रकार की तूलिका की साधारण थिरकन भी असाधारण चित्र को जन्म देती है उसी प्रकार प्रतिभा-सम्पन्न कथाकार का सुव्यवस्थित नियोजन-शिल्प सामान्य कथानक को लोक-प्रिय कहानी के रूप मे प्रस्तुत कर देता है।

जैन कथाओं की सार्वभौमिकता

जैन-कथा-साहित्य ने विश्व की कथाओ को विविध-रूपो मे प्रभावित किया है। इन जैन कहानियो के कथानक विश्व की कथाओ मे इस प्रकार गुम्फित है कि शोध-दृष्टि सुगमता से इनकी व्यापकता का परिज्ञान कर सकती है।

प्राचीन काल मे जैन-साधु विभिन्न प्रान्तो मे भ्रमण कर जैन-धर्म का प्रचार करते थे एव कथाओ के माध्यम से जैन सिद्धान्तो की गूढता को सुबोध बनाकर लोक-मानस की अभिरुचि को जैन-धर्म के प्रति आकर्षित करते थे। फलत ये कथाए लोक-प्रिय बनी और प्रान्तीय बोलियो मे आवृत्त होकर लोक-सस्कृति की सरक्षिका कहलाई।

"बृहत्कल्प भाष्य मे कहा गया है कि देश-देशान्तर भ्रमण करने से साधुओ की दर्शन-शुद्धि होती है तथा महान् आचार्य आदि की सगति से वे अपने आपको धर्म मे अधिक स्थिर और विद्या-मत्र आदि की प्राप्ति कर सकते है। धर्मोपदेश के लिए साधु को नाना देशो की भाषा मे कुशल होना चाहिए, जिससे वे उन देशो के लोगो को उनकी भाषा मे उपदेश दे सके। जन पद-परीक्षा करते समय कहा गया है कि साधु इस बात की जानकारी प्राप्त करे कि कौन से देश मे किस प्रकार से धान्य की उत्पत्ति होती है—कहा वर्षा से धान्य होते है? कहा नदी के पानी से होते है? इस प्रकार साधु को यह जानना आवश्यक है कि कौन से देश मे वाणिज्य से आजीविका चलती है और कहा के लोग खेती पर जीवित रहते हैं तथा कहा लोग मास-भक्षण

करते हैं और कहा पुष्प फल आदि का बहुतायत से उपयोग होता है। जैन-ग्रन्थो से पता चलता है कि देश-विदेशो मे जैन-श्रमणो का विहार क्रम-क्रम से बढा। सम्प्रति उज्जयिनी का बडा प्रभावशाली राजा हुआ। जैन-ग्रन्थो मे सम्प्रति की बहुत महिमा गायी गई है। इसने (सम्प्रति ने) अपने योद्धाओ को शिक्षा देकर साधु के वेष मे सीमान्त देशो मे भेजा जिससे इन देशो मे जैन-श्रमणो को शुद्ध आहार पान की प्राप्ति हो सके। इस प्रकार राजा सम्प्रति ने आन्ध्र, द्रविड, महाराष्ट्र और कुडुवक (कुर्ग) आदि जैसे अनार्य देशो को जैन-श्रमणो के सुख-पूर्वक विहार करने योग्य बनाया। इसके अतिरिक्त सम्प्रति के समय से साढे पच्चीस देश आर्य देश माने गए, अर्थात इन देशो मे जैन धर्म का प्रचार हुआ।"[1]

जैन कथाओ ने अपनी रचना- प्रक्रिया से विश्व के समस्त कथा साहित्य को विशेषत प्रभावित किया है। किस प्रकार कथा की नियोजना होनी चाहिए तथा किन किन रूपो मे कथाकारो को कथाओ मे लोक-जीवन की अभिव्यक्ति करके भाव-व्यजना को बलवती बनाना चाहिए एव रस योजना कहानियो मे किस प्रकार की जानी चाहिए आदि विषयो का जिस गभीरता से जैन कथाओ मे निरूपण किया गया है उसका अनुशीलन कर ससार के कहानीकारो ने जो विशिष्ट उपाधिया प्राप्त की है उनका प्रमुख साधन जैन-कथा साहित्य ही है। जैन-कथा प्ररूढियो से विश्व-कथा साहित्य पर्याप्त रूप रूप से अनुप्राणित हुआ है। जैन-कथाओ की भाव-भाषा-शैली से प्रभावित विश्व का कहानी साहित्य अपने प्रारम्भिक उत्थान से ही है। जैन-पुराणो के मूल प्रतिपाद्य विषय ६३ महापुरुषो के चरित्र है। इनमे सन्निहित कथाएँ यूरोपियनो के मत से विश्व-साहित्य मे स्थान पाने योग्य हैं।

जैन कथाओ को आधार बनाकर अनेक कवियो एव नाटककारो ने कई महाकाव्य, खड काव्य एव नाटक लिखे है। सूफी कवि जायसी का प्रसिद्ध महाकाव्य 'पद्मावत' की रचना प्राकृत जैन-कथा 'रयण सेहरी नरवइ कहा' पर आधारित है। डॉ० रामसिंह तोमर के मतानुसार जैन साहित्य से इस प्रकार अनेक काव्यमय आख्यायिकाओ के रूप हमारे प्रारम्भिक हिन्दी कवियो को मिले और प्रेम मार्गी कवियो ने उनपर काव्य लिखकर अच्छा मार्ग प्रस्तुत किया (द्रष्टव्य जैन-साहित्य की हिन्दी साहित्य को देन- प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ४६७)

---

1 जैन-ग्रन्थो मे भौगोलिक सामग्री और भारत वर्ष मे जैन-धर्म का प्रसार ले० डॉ० जगदीश चन्द्र जैन (प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० २५१)

जैन साहित्य की उपदेश-परक प्रवृत्ति ने (जो जैन-कथाओ मे अधिक मिलती है) भारतीय सन्त साहित्य को अधिक प्रभावित किया है –"दूसरी प्रधान धारा जैन साहित्य मे उपदेश की है, यह अधिक प्राचीन है। यह उपदेशात्मकता हमे भारतीय साहित्य मे सर्वत्र मिल सकती है, लेकिन जैन साहित्य की उपदेशात्मकता गृहस्थ जीवन के अधिक निकट आ गई है। भाषा और उसकी सरलता इसके प्रधान कारण है। वर्तमान साधु वर्ग पर जैन साधुओ और सन्यासियो का अधिक प्रभाव प्रतीत होता है। जो हो हिन्दी साहित्य मे इस उपदेश (रहस्यवाद मिश्रित) परम्परा के आदि प्रवर्त्तक कबीरदास है और उनकी शैली, शब्दावली का पूर्ववर्ती रूप जैन रचनाओ मे हमे प्राप्त होता है। सिद्धो का भी उनपर पर्याप्त प्रभाव है। यह कहना अनुचित और असगत न होगा कि हिन्दी की इस काव्य धारा पर भी जैन साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पडा है।"

कुन्दकुन्दाचार्य, योगीन्दु देवसेन और मुनि रामसिह इत्यादि कवियो की उपदेश प्रधान शैली और सन्त साहित्य की शैली मे वहुत समानता है।"

(जैन साहित्य की हिन्दी साहित्य को देन, ले० डॉ० रामसिह तोमर प्रेमी अभिदन्दन ग्रन्थ पृष्ठ ४६७)

जैन कथा साहित्य की लोक-प्रियता का सबसे प्रवल प्रमाण यह है कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व जैन कथाकारो ने जिन कहानियो का प्रणयन किया वे आज भी लोक कथाओ के रूप मे भारत के सभी प्रदेशो मे प्रचलित है। जैन आगमो मे राजा श्रेणिक के पुत्र अभय कुमार के बुद्धिचातुर्य की जो कथा है वह अपने उसी रूप मे हरियाणा के लोक-साहित्य मे अढाई द्वेत की कथा के नाम से प्रसिद्ध है और दक्षिण के जैमिनी स्टूडियो ने इस कथा के आधार पर 'मगला' चित्रपट का निर्माण किया है। इसी प्रकार शेर और खरगोश की कहानी जिसमे खरगोश शेर को कुए मे अन्य शेर की परछाई दिखाकर ठगता है। 'भिखारी का सपना' जिसमे स्वप्न मे हवाई किला वनाता हुआ भिखारी अपनी एकमात्र सम्पत्ति दूध की हाडी को फोड डालता है। 'नीले सियार की कहानी' जिसमे सियार अपने को नीला रग मे रगकर जगल का राजा वन वैठता है। बन्दर और बया की कहानी, जिसमे बन्दर बया के उपदेशो को अनसुना करके उसके घोसले को नष्ट कर डालता है आदि अनेक कहानियाँ आज भी सर्व साधारण मे प्रचलित है। ये ही कहानियाँ जैन साहित्य के अतिरिक्त हमे बौद्धजातको, पचतत्र, हितोपदेश, कथा सरित्सागर

आदि जैनेतर कथा साहित्य मे भी प्राप्त होती है। इसका अभिप्राय यही है कि जैन कथा साहित्य सार्वभौतिकता की व्यापक भावभूमि पर खडा हुआ है। हम उसे किसी समुदाय या धर्म विशेष की सकुचित सीमाओ मे नही बाध सकते। और न उसका क्षेत्र किसी एक देश या युग तक ही सीमित है। उसका विश्व व्यापी महत्व है और युग विशेष से ऊपर उठकर वह विश्व साहित्य की चिरतन और शाश्वत धरोहर है। समग्र मानव जाति की वह अमूल्य सम्पत्ति है और यह प्रसन्नता की बात है कि इसी सार्वजनीन और सार्वभौमिक रूप मे जैन कथा साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति का उपयोग भी हुआ है। जैन कथा साहित्य न केवल भारतीय कथा साहित्य का जनक रहा है अपितु सपूर्ण विश्व कथा साहित्य को उसने प्रेरणा दी है। भारत की सीमाओ को लाघकर जैन कथाऐ अरब, चीन, लका, योरोप आदि देश-देशान्तरो मे पहुची है और अपने मूल स्थान की भाँति वहाँ भी लोक प्रिय हुई है। योरोप मे प्रचलित अनेक कथाए जैन कथाओ से अद्भुत साम्य रखती है। उदाहरण के लिये नायाधम्म कहा, चावल के पाच दाने की कथा कुछ बदले हुए रूप मे ईसाइयो के धर्मग्रन्थ 'बाइबिल' मे प्राप्त होती है। चारुदत्त की कथा का कुछ अश जहाँ वह बकरे की खाल मे बन्द होकर रत्नद्वीप पर जाता है सिन्धबाद जहाजी की कहानी से पूर्णत मिलता जुलता है। प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान ट्वानी ने कथाकोष की भूमिका मे यह स्पष्ट कर दिया है कि विश्व कथाओ का मूल स्त्रोत जैनो का कथा साहित्य ही है, क्योकि जैन कथाकोषो की कहानियो और योरोप की कहानियो मे पर्याप्त साम्यता है तथा यह भी निश्चित है कि ये सब की सब कहानियाँ जैन कथा साहित्य से उधार ली गई है। ट्वानी ने अनेक उदाहरणो द्वारा इस बात को सिद्ध किया है।

प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान प्रोफेसर जैकोबी ने अपनी 'परिशिष्ट पर्व' की भूमिका मे एक स्त्री और उसके प्रेमी की एक जैनकथा को उद्धृत किया है। आश्चर्य की बात है कि यही कहानी ज्यो की त्यो चीन के लोक साहित्य मे प्रचलित है और फ्रान्स मे भी कुछ रूपान्तर के साथ लोक-प्रिय है। 'अलिफ लैला' (आरबोपन्यास) की कहानियो का मूल आधार भी जैन कथा साहित्य है, यह बात कुछ आश्चर्य जनक सी प्रतीत होती हुई भी सत्य है। 'अलिफ लैला' मे एक बजीर की लडकी बादशाह की मलिका बनकर प्रति रात्रि एक कहानी सुनाकर अपने प्राण बचाती है। इसी प्रकार आवश्यक चूर्णि की कहानी 'चतुराई का मूल्य' है जिसकी नायिका कनकमजरी प्रति रात्रि एक कहानी सुनाने का लोभ देकर अपने पति को, जो कि राजा है ६ मास तक

अपने पास रोके रहती है। 'नायाधम्म कहा की 'प्रलोभनो को जीतो' कहानी का कथानक 'अलिफ लैला' की कहानियो से बहुत साम्य रखता है।

[जैन कथा साहित्य—लेखक प्रोफेसर फूलचन्द जैन सारग एम ए साहित्य रत्न, श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्र थ से साभार ।]

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन ने जैन-कथा-साहित्य से चुनकर 'दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ' नाम से एक कथा-सग्रह प्रस्तुत किया है । इस सग्रह मे सग्रहीत कथाएँ तीन रूपो मे (लौकिक कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ एव धार्मिक कहानियाँ) विभाजित की गई है ।

लौकिक कथाओ के सम्बन्ध मे डॉ० जैन ने लिखा है लौकिक कथाओ मे उन लोक-प्रचलित कथाओ का सग्रह है जो भारत मे बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है, और जिनका किसी सम्प्रदाय या धर्म से कोई सम्बन्ध नही है। इस विभाग मे दो कहानियाँ नाया धम्म कहा (ज्ञातृ धर्म कथा) मे से ली गई है। इन कहानियो मे चावल के पाँच दाने (नाया धम्म ७) कहानी कुछ रूपान्तर के साथ मूल सर्वास्तिवाद के विनय वस्तु (पृ० ६२) तथा वाइबिल (सैण्ट मैथ्यू की सुवार्ता २५, सेण्ट ल्यूक की सुवार्ता १९) मे भी आती है । माकदी पुत्रो की कहानी (नाया धम्म ९) काल्पनिक प्रतीत होने पर भी हृदय-ग्राही तथा शिक्षाप्रद है। इस प्रकार के लौकिक आख्यानो द्वारा भगवान् महावीर सयम की कठोरता और अनासक्ति भाव का उपदेश देते थे । यह कथा कुछ रूपान्तर के साथ वलाहस्स जातक (स० १९६) तथा दिव्यावदान मे उपलब्ध होती है।इस विभाग की कई कहानियाँ पहेली साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्व की है। पण्डित कौन ? (आवश्यक चूर्णि, पृ० ५२२–२६) चतुर रोहक (वही पृ० ५४४–४६) राजा का न्याय (वही पृ० ५५५–५६), चतुराई का मूल्य (वही पृ० ५७–६०) नामक कहानियाँ अत्यन्त मनोरजक और कल्पना शक्ति की परिचायक है। इनमे से अनेक कहानियाँ आजकल वीरबल और अकबर की कहानियो के नाम से प्रचलित है । चतुर रोहक का कुछ भाग महा उम्मग्ग–जातक मे पाया जाता है । पडित कौन है ? का कुछ भाग रूपान्तर के साथ शुक सप्तति (२८) मे आता है । दो मित्रो की कहानी (आवश्यक चूर्णि, पृ० ५५१) कथासरित्सागर (पृ० ३१५) शुक सप्तति (३९) तथा कुछ रूपान्तर के साथ कूट वाणिज जातक और पच-तत्र मे पायी जाती है।"[1]

1. दो हजार वर्ष पुरानी कहानिया—प्रास्ताविक से साभार ।

प्राचीन जैन कथा-साहित्य मे सर्वप्रथम गुम्फित बिना विचारे करने का फल, घण्टी वाला गीदड, कपट का फल, बन्दर और बया, लालची गीदड, राजा का न्याय, गीदड की चतुराई, दो पाथली सत्तू, घोडो का सईस, कृतघ्न कौए, वृद्ध जनो का मूल्य, वैद्यराज या यमराज, विद्या का घडा, रानी मृगावती, राजा शालिवाहन का मत्री, विक्रमराज मूलदेव गगा की उत्पत्ति, कपिल मुनि, शम्ब की कील, यक्ष या लकडी का ठूँठ, चाण्डाल पुत्रो की कहानी, रोहिणेय चोर, जिनदत्त का कौशल, कल्पक की चतुराई आदि कहानियाँ, बघेलखड, बुन्देलखड, छत्तीसगढ, राजस्थान, मालवा, नीमाड, रुहेलखण्ड, बगाल, काश्मीर, गढवाल, पजाब, भोजपुर, कर्नाटक, दक्षिण भारत, गुजरात आदि भू-भागो मे कुछ रूपान्तर के साथ विभिन्न शीर्षको से प्रचलित है। इन मे से कतिपय कथाएँ तो पाश्चात्य देशो मे भी साधारण परिवर्तन के साथ लोक जीवन मे समा गई है।

जेन-कथा-साहित्य की यह सार्वभौमिकता प्रमाणित कर रही है कि विश्व की कहानियाँ जैन कथाओ से अत्यधिक प्रभावित है।

जैन कथाओं में नामों की संयोजना

नामकरण भी हमारी सस्कृति एव सभ्यता का द्योतक है । विश्व मे कोई भी ऐसा चेतन तथा अचेतन नही है जिसका नाम न हो। नामो के माध्यम मे ही हमे ऐसे सकेत उपलब्ध होते है जिनसे पदार्थो एव प्राणियो के स्वभावादि का परिज्ञान होता है । सस्कारो मे नामकरण को अभिहित करके हमारे आचार्यो ने नामो की उपयोगिता को भी समझा है । विभिन्न प्रकारो के नाम विश्व के प्रागण मे पल्लवित एव पुष्पित भिन्न-भिन्न धर्मो एव सम्प्रदायो के क्रमिक विकास से सम्बद्ध इतिहास की उभरी हुई रेखाओ को प्रस्तुत करते हैं। रामदास, सियाशरण कृष्णशकर, कृष्णविहारी, श्यामबिहारी, राधारमण, गगादास, यमुनादास, शिवदास, शिवसहाय, जिनदास, जिनदत्त, ऋषभदास, कालीचरण, भैरवनाथ, नर्मदाप्रसाद, धर्मदास, भूतनाथ, पार्वती, अनुसूया, सीता, राधा, चम्पा, चमेली, देवीदास, सागरमल, प्रतापसिंह, नन्ददास, बुद्धि-प्रकाश, गोपालदास, गोपालशरणसिह आदि नाम एक ओर मानव की विशिष्ट सम्प्रदाय-प्रियता को बताते हैं और दूसरी ओर उसकी भक्ति-परम्परा को भी अभिव्यञ्जित करते है । ग्रामीण नाम यदि हमारी ग्राम्य-संस्कृति को जीवित रख रहे है तो सुसस्कृत नामावली एक उदात्त सास्कृतिक चेतना की अभिवृद्धि को भी मुखरित करती है ।

गुण स्वभाव, जाति, धार्मिक विश्वास, देश-परम्परा, शारीरिक आकार-प्रकार, कुल-गोत्रादि सन्ति पद्धति, पारिवारिक वातावरण, ग्राम्य-देशी-

देवता, सम्प्रदाय, गुरु-सरक्षण, वरदान, मान्यता आदि का नामकरण मे विशेष महत्व माना गया है ।

कतिपय नाम अभिधा मूलक होते है और कुछ नाम लाक्षणिक भी कहे गये है । लेकिन लाक्षणिक एव व्यग्यात्मक नाम भी शनै शनै अभिधा मूलक हो जाते है ।

न केवल जैन पुराणो मे ही वरन समस्त वाड् मय मे नामो की ऐसी राशि उपलब्ध होती है, जिन्हे शब्द शक्तियो के आधार पर अनेकधा वर्गीकृत किया जा सकता है । शब्द-शक्तियो के आधार पर तो नामो को वर्गीकृत किया ही जा सकता है । उनके द्वारा झकृत अर्थो के माध्यम से भी विभाजन पूर्ण रूपेण सभाव्य है । शब्द-शक्तियो के सन्दर्भ मे सर्वप्रथम समूची नाम राशि को द्विधा विभक्त कर सकते है —

व्यासात्मक एव समासात्मक । इस उभय विधि नाम-राशि को पुन अभिधा शक्ति के आधार पर निम्नलिखित रूप से चतुर्धा विभाजित किया जा सकता है —

(१) रूढ
(२) यौगिक
(३) योगरूढ
(४) यौगिक रूढ ।

(१) जिन नामो की व्युत्पत्ति न हो सके उन्हे रूढ (शब्द) कहते है जैसे—डिन्थ (काठ का हाथी) इस नाम की कोई व्युत्पत्ति नही है ।

(२) अवयव शक्ति से अर्थ-बोधक नाम यौगिक कहे जाते है । जैसे—पाचक (रसोइया) तथा पाठक जो पढाता हो उसे पाठक कहते है । यहाँ पठ् क्रिया से यह नाम निर्मित है ।

(३) समुदाय और अवयव दोनो की शक्ति से जो अर्थबोधक नाम होते है, वे योगरूढ कहलाते है । जैसे—पकज । इस नाम की व्युत्पत्ति की जाय तो पकात् जायते इति पकज । लेकिन यह नाम केवल कमल के लिए ही रूढ हुआ है । इस प्रकार इस नाम का बोध समुदाय एव अवयव दोनो के माध्यम से होता है । दूसरे शब्दो मे हम यो कह सकते है कि जहाँ अवयव शक्ति, समूह-शक्ति से नियन्त्रित होकर अभीष्ट अर्थ प्रदान करे, उसे 'योग-रूढ़' नाम कहते है ।

(४) जिनकी समूह शक्ति निरपेक्ष हो वे यौगिक रूढ नाम कहलाते है। जैसे–अश्वगन्धा (एक जडी का नाम)। यदि यहाँ हम इस नाम की अवयव शक्ति द्वारा व्युत्पत्ति करें तो अश्वस्य गन्ध इव गन्धो यस्या—घोडे की गन्ध के समान है गन्ध जिसकी। लेकिन यह व्युत्पत्ति यहाँ निरपेक्ष है क्योकि असगन्ध नामक जडी घोडे की गन्ध के समान गन्ध की अपेक्षा नही रखती। इसी प्रकार समूह-शक्ति से भी यहाँ निरपेक्षता है। यदि इन चार प्रकार के नामो के भेद-प्रभेदों पर विचार किया जाय तो अनेक भेद हो सकते है। दृष्टव्य—जयदेव विरचित, चन्द्रालोक का प्रथम मयूख।

जैन कथाओ मे नामों की सार्थकता उल्लेख्य है। प्राय गुणो के अनुरूप ही नाम रखे गये है। जैसे–धनदत्त (दान मे धन देने वाला), जयकुमार (विजय प्राप्त कर्त्ता), सुलोचना (सुन्दर नेत्र वाली), दुर्गन्धा (जिसके शरीर से दुर्गन्ध आती हो) इत्यादि। पुरातत्व की दृष्टि से भी इन जैन नामो का विशेष महत्व है। इनके माध्यम से हमे प्राचीन जैन-सस्कृति की एक प्रशस्त झलक दिखाई देती है। इन नामो के विशद अनुशीलन से हमे यह ज्ञात होता है कि जातिगत नाम शनै शनै व्यक्ति वाचक बन गये एव स्थानो के नामो ने व्यक्तिवाचक नामो को भी प्रभावित किया। इस प्रकार व्यवसाय, जाति, देश आदि के अनुरूप भी हजारो नाम–इन जैन कथाओ मे अनायास ही उपलब्ध हो जाते है।

इन जैन नामो ने अपनी रमणीयता, कोमलता, गुणानुरूपता एव लालित्य से लोक-प्रियता तो प्राप्त की ही है, साथ ही पूर्ववर्ती तथा परवर्ती नाम परम्परा को विविध रूपो मे प्रभावित भी किना है। उदाहरणार्थ यहाँ कुछ जैन नामो का उल्लेख किया जाता है। ये पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ के परिचायक है एव सार्थक कहे जा सकते है। रूढ नाम तो कम है, लेकिन यौगिक, योगरूढ तथा यौगिकरूढ नामो की पर्याप्त सख्या मिलती है।

जैन आचार्यो के नाम

१ गौत्तम गणधर २ भद्रबाहु ३ धरसेन ४ कुन्दकुन्द ५. उमास्वाति ६. समन्तभद्र ७ सिद्धसेन ८ देवनन्दि ९ अकलक १०. विद्यानन्दि ११. जिनसेन १२ प्रभाचन्द्र १३ वादिराज १४. जिनभद्रगणि १५. हरिभद्र १६. हेमचन्द्र १७ यशोविजय।

ऋषि, मुनियो एवं साध्वियो की नामावली

ऋषि-मुनियो के नाम	साध्वियो के नाम
१. गुणसागर	१ पृथिवीमती
२. सुगुप्ति	२. जिनमती

३ यमधर
४ अरविन्द
५ समाधिगुप्त
६ सुदर्शन
७ बालि
८ सुधर्माचार्य
९. सूर्यमित्र
१०. यशोभद्र
११ सुकुमाल
१२ प्रीतकर

राजाओ के नाम

१ श्रेणिक
२ धर्मघोष
३ मणिमाली
४ जितशत्रु
५ विश्वसेन
६ अन्धकवृष्टि
७ अकम्पन
८. विमलवाहन
९ अरविन्द
१० श्रीकान्त
११ धनपाल
१२ धात्रिवाहन

३. राजीमती
४ चन्दनवाला
५. वसुमती
६ मधुमती
७ स्वस्तिमती
८ धर्ममती
९ कीर्तिमती
१०. त्यागप्रभा
११ धर्मप्रभा
१२ गुणवती

रानियो के नाम

१ चेलिनी
२ लक्ष्मीमती
३ गुणमाला
४. धनदत्ता
५ सुप्रभा
६ सुलोचना
७ विमलमती
८ लक्ष्मीवती
९ मनोहरी
१०. धनमती
११ वसुन्धरा
१२ विदेही

मन्त्रियो के नाम

१ विश्वभूति
२ अरविंद
३ नयधर
४ जयधर
५ बन्धुदत्त
६ वासव
७ अग्निमित्र
८ गुणधर

९ यशोधर
१० श्रीधर
११ दुर्मति
१२ सोमदत्त

सेठो (धनपतियो) के नाम

१ धनदत्त २ वसुमित्र ३ समुद्रदत्त ४ वृषभदास ५ जिनदत्त ६. धर्मदत्त ८ धनपति ९ भविष्यदत्त १० देविल ११ श्रीकुमार १२ धनपाल।

सेठानियो (धनपत्नियो) के नाम

१. जिनमती २. सागरसेना ३. मनोरमा ४ वसुकान्ता ५ नागश्री ६. यशोभद्रा ७. कनकप्रभा ८ रतिकान्ता ९ कमलश्री १० मनोहरी ११. देवलमती १२. सत्यभामा।

निधियों के नाम

१ कालनिधि २ महाकालनिधि ३ पाडुकनिधि ४ माणवक ५ नैसर्पनिधि ६ सर्वरत्ननिधि ७ शखनिधि ८ पद्म निधि।

नगरो के नाम

१ राजगृह २ पाटलिपुत्र ३ रत्नसचयपुर ४ पोदनापुर ५. तेरपुर ६ अयोध्या ७ यक्षपुर ८. किष्किधापुर ९. भृगुकच्छ १० अलकापुर ११ सिंहपुर।

नगरियों के नाम

१. उज्जयिनी २ वाराणसी ३ अयोध्या ४ पुण्डरीकिणी ५ द्वारावती ६ चम्पापुरी ७ पुष्कलावती ८ कौशाम्बी ९. मिथिला १० चन्द्रपुरी ११ अहिछत्रपुरी १२ द्वारिकापुरी।

नदियो के नाम

१ गगा २ सिधु ३ रोहित ४ रोहितास्या ५ हरित ६ हरिकान्ता ७ सीता ८ सीतोदा ९. नारी १० नरकान्ता ११ सुवर्ण कूला १२ रुप्य कूला १३ रक्ता १४ रक्तोदा।

पहाड़ो के नाम

१ हिमवत २ महाहिमवत ३. निषिध ४ नील ५ रुक्मि ६ शिखरिणी ७ मलयागिरि ८ मन्दारगिरि ९ रुचिकगिरि १० गन्धमादन।

तालाबो के नाम

१ पद्म २. महापद्म ३ तिगिछ ४. केशरि ५ महापुण्डरीक ६ पुण्डरीक।

ग्रामो (गाँवो) के नाम

१ सवर २, शाल्मलिखण्ड ३ गञ्जपुर ४ शूपरिक ५, आलोक ६ वेणातडाग ७, नन्दिग्राम ८ आनन्दपुर ९. रत्नपुर १० पलासकूट ११ यशोपुर १२ धर्मपुर।

तीर्थ क्षेत्रो के नाम

१ सम्मेदशिखर २ पावापुर ३ राजगृही ४ चन्द्रपुरी ५ कौशाम्बी ६ हस्तिनापुर ७ स्वर्णगिरि (सोनागिरि) ८ कुण्डलपुर ९ सिद्धवर कूट १० गिरनार ११ मागी तुगी १२ श्रवण वेलगोला।

सामान्य नर-नारियों के नाम

पुरुषो के नाम	नारियो के नाम
१ मानभद्र	१ मनोहरी
२ पूर्णभद्र	२ किन्नरी
३. चारुदत्त	३ नीलीबाई
४ रुद्रदत्त	४ कपिला
५ सुदृष्टि	५. वसुन्धरी
६ अञ्जन	६. सोमिला
७ लकुच	७ भद्रा
८ गोविन्द	८ सुलसा
९ सात्यकि	९ सुदत्त
१० धरणीधर	१० सूरदत्त
११ कपिल	११ कोशा
१२ माकन्दी	१२ उपकोशा
१३ मल्ल	१३ धनवती
१४ अट्ठण	१४ अचला
१५, फलहिय	१४ विरूपा
१६ मच्छिअ	१६ आर्द्रा
१७ भरत	१७ रूपवती
१८ रोहक	१८ धरित्री

नामो की इस सयोजना से कई तथ्य प्रकाश मे आते हैं। नगरो के नामकरण मे नरेशो के नामो का सकेत स्पष्ट है। एक युग था जब नृपति अपने नामो को कुछ समय के लिए अमरत्व प्रदान करने के लिए नगरो तथा ग्रामो के नाम-करण मे अपने नामो को आधारभूत बनाते

थे। "कहा जाता है कि भरतवश की छटी पीढी मे राजा हस्ति हुए। उन्होने हस्तिनापुर नाम की नगरी वसाकर उसे अपनी राजधानी वनाया था। इसी तरह भरत के पुत्र तक्ष ने तक्षशिला और पुष्कर ने पुष्करावती वसाई थी। वुन्देलखण्ड प्रान्त मे चदेल और वुन्देल राजाओ के वसाये हुए कई स्थल मौजूद है। मदनपुर को चदेल राजा मदन वर्मा ने वसाया था। ललितपुर सुमेरसिंह की रानी ललिता का वसाया हुआ वताया जाता है। हमीरपुर को अलवर के किसी हमीर देव नामक राजपूत ने वसाया था।"[1] ग्रामो के सम्बन्ध मे विशिष्ट पशु-पक्षियो एव पादप-पुष्पो का वाहुल्य उल्लेख्य है। सूकरपुरा गाँव मे जगली सुअरो का एक समय वाहुल्य था। अत ग्राम को सूकरपुरा नाम प्राप्त हुआ। इसी पकार कगलिया (कागो का आधिक्य सूचित करता है) इमलिया (इमली नामक वृक्षो का वाहुल्य बताता है) कैथा (कपित्थ–कैथा की अधिकता सूचित करता है) वेला (एक प्रकार के सुगन्धित पुष्प का वाहुल्य प्रकट करता है) आदि ग्रामो के नाम उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किये जा सकते है। इस प्रकार के हजारो ग्राम नाम प्रचलित है। कन्याओ एव युवतियो के नाम कर्ण-प्रिय होने चाहिए—यह महर्षियो का मत है। ऋषियो के इस अभिमत का उपयोग नारियो तथा वालिकाओ के नामकरण मे विशेषत हुआ है। देवालयो, पर्वतो एव सर-सरिताओ के नाम विशिष्ट ऋषि-मुनियो, विशिष्ट भू-भागो, घटनाविशेष, सलिल-रगादि पर आधारित कहे गये है। विशिष्ट धातु की उपलब्धि कभी-कभी भूधर एव सर-सरिताओ के नामकरण का आधार वन जाती है।

कतिपय नाम ऐसे भी है जिनका सम्वन्ध प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश, गौडी, मालवी, वुन्देली, वघेली, मराठी, छत्तीसगढी, कन्नड, मलयालम आदि भाषा-वोलियो से है। ऐसे नामो का अध्ययन भी वडा रोचक होगा। आवश्यकता है विभिन्न भाषाओ और वोलियो के सम्यक् अध्ययन की। जैन कथाओ मे आये हुए विभिन्न नामो का अनुशीलन यदि धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भाषा वैज्ञानिक, पुरा तत्त्वीय आदि दृष्टिकोणो से किया जाय तो इन नामो की सीमा, उत्पत्ति विस्तार आदि का एक विशद इतिहास हमे उपलब्ध हो सकता है। लेकिन यह कार्य बहुत प्रतिभावान विद्वान् के श्रम से ही पूर्ण हो सकेगा।

---

1 गामो और नगरो का नामकरण—ले० श्रीकृष्णानन्द गुप्त मधुकर १ जुलाई १९४२।

जैन कथाओं का साहित्यिक सौन्दर्य

साहित्यिक दृष्टि से जैन कथा साहित्य की महत्ता सर्वमान्य है। साहित्य मे जिस गरिमा, विश्व-कल्याण, उदात्त भावना, सास्कृतिक प्रबोधन, सार्वभौमिक सहयोग, पुनीत सौन्दर्य बोध, सरसता, सत्य, शिव, सुन्दर की व्यापकता, कलात्मक अभिव्यजना, सार्वजनीन सरस भावुकता आदि की प्रतिष्ठा की गई है, उसकी रूपात्मक अभिव्यक्ति बडे कौशल के साथ इन कथाओ मे उपलब्ध होती है।

जैन कहानियो मे धर्म, अर्थ, काम एव मोक्ष—इन चार तत्वो का विशद विवेचन हुआ है, फिर भी धर्म साधना के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति का उद्देश्य विशेषत सर्वत्र मुखरित है। शृ गारादि नव रसो की यहाँ सरस अभिव्यजना हुई है लेकिन आध्यात्मिक वातावरण के परिप्रेक्ष्प मे शान्त रस की प्रधानता उल्लेख्य है। सासारिक रूपासक्ति तथा वैभव शालिता की इन कथाओ मे उपेक्षा प्रदर्शित नही हुई है अपितु यथावसर इनके रसपूर्ण चित्रण के साथ-साथ जीवन के चरम लक्ष्य—विरक्ति का सहज निरूपण करके कथाकार ने शम की प्रधानता को कभी नही भुलाया है। इन कहानियो मे एक ओर शृ गार का सुखद सम्मिश्रण है और दूसरी ओर जीवन की विरक्ति शब्द-शब्द मे मुखर हुई है। कतिपय कहानियो मे राग (प्रेम) का बडा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है लेकिन कथा-समाप्ति पर इस राग की निस्सारता को बताकर कथाकार ने विरक्ति- परिपूर्ण एक महान् उद्देश्य की परिपुष्टि निम्नस्थ छन्दो की भावना मे की है—

राग उदै जग अन्ध भयो,
सहजहि सब लोगन लाज गँवाई।
सीख विना नर सीखत है,
विषयादिक सेवन की सुघराई।
तापर और रचै रसकाव्य,
कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझन की अँखियान मे,
डारत है रज रामदुहाई।

—भूधरदास

राग उदै भोग भव लागत सुहावने से,
विना राग ऐसे लागै जैसे नाग कारे है।
राग ही सौं पाग रहे तन में सदीव जीव,
राग गए आवत गिलानी होत न्यारे हैं।
राग सौ जगत रीति झूठी सब साँची जानै,
राग मिटै सूझत असार खेल सारे हैं।
रागी विन रागी के विचार मे वडौई भेद,
जैसे भटा पच काहू-काहू को वयारे है।

—भूधरदास

"हिन्दी जैन साहित्य की एक सबसे वडी विशेषता यह है कि उसमे शान्त रस की सरिता ही सर्वत्र प्रवाहित दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत और प्राकृत के जैन ग्रन्थकारो के समान हिन्दी जैन ग्रन्थकारो का भी एक ही लक्ष्य रहा है कि मनुष्य किसी तरह सासारिक विपयो के फन्दे से निकल कर अपने को पहचाने और अपने उत्थान का प्रयत्न करे। इसी लक्ष्य को सामने रखकर सबने अपनी रचनाएँ की है। हिन्दी जैन साहित्य मे ही नही, अपितु हिन्दी साहित्य मे कविवर बनारसीदास जी की आत्मकथा तो एक अपूर्व ही रचना है। उनका नाटक समयासार भी अध्यात्म का एक अपूर्व ग्रन्थ है।'[1]

इन पंक्तियो मे अभिव्यक्त विचारधारा जैन कथा साहित्य के उद्देश्य के ही अनुरूप है।

1, जैन धर्म—ले० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पृष्ठ २५७

जैसा कि पूर्व मे सकेत किया जा चुका है, जैन कवियो के समान ही जैन कथाकारो ने जीवन के समस्त रूपो को चित्रित कर उन पर विरक्ति का गहरा रग शान्ति-तूलिका से इस प्रकार किया है कि 'शम' के चित्र सर्वत्र उभर कर सुशोभित हो रहे हैं।

'जैन कवियो पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनमे जीवन-विरक्ति बहुत अधिक मात्रा मे है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इसी की ओर सकेत करते हुए लिखा है कि साधारणतया जैन साहित्य मे जैन धर्म का ही शान्त वातावरण व्याप्त है, सत के हृदय मे शृगार कैसा ? जैन काव्य मे शान्ति या शम की प्रधानता है अवश्य, किन्तु वह आरभ नही परिणति है। सभवत पूरे जीवन को शम या विरक्ति का क्षेत्र बना देना प्रकृति का विरोध है। जैन कवि इसे अच्छी तरह से जानता है, इसलिये उसने शम या विरक्ति को उद्देश्य के रूप मे मानते हुए भी सासारिक वैभव, रूप, विलास और कामासक्ति का चित्रण भी पूरे यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है। जीवन का भोग पक्ष इतना निर्बल तथा सहज आक्राम्य नही होता, इसका आकर्षण दुर्निवार्य है, आसक्ति स्वाभाविक, इसीलिए साधना के कृपाण पथ पर चलने वालो के लिए यह और भी भयकर हो जाते है। सिद्ध साहित्य की अपेक्षा जैन साहित्य मे रूप सौन्दर्य का चित्रण कही ज्यादा बारीक और रगीन हुआ है, क्योकि जैन धर्म का सस्कार रूप को निर्वाण प्राप्ति के लिए सहायक नही मानना, रूप अदम्य आकर्षण की वस्तु होने के कारण निर्वाण मे बाधक है—इस मान्यता के कारण जैन कवियो ने शृगार का बडा ही उद्दाम वासनापूर्ण और क्षोभकारक चित्रण किया है, जड पदार्थ के प्रति मनुष्य का आकर्षण जितना घनिष्ठ होगा, उससे विरक्ति उतनी ही तीव्र। शमन शक्ति की महत्ता का अनुमान तो इन्द्रिय भोग-स्पृहा की ताकत से ही किया जा सकता है। नारी के शृगारिक रूप, यौवन, तथा तज्जन्य कामोत्तेजना आदि का चित्रण इसी कारण बहुत सूक्ष्मता से किया गया है। जैन-कवि पौराणिक चरित्रो मे भी सामान्य जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियो की ही स्थापना करता है। उसके चरित्र अवतारी जीव नही होते इसीलिए उनके प्रेमादि के चित्रण देवत्व के आतक से कभी भी कृत्रिम नही हो पाते। वे एक ऐसी जीवात्मा का चित्रण करते है जो अपनी आतरिक शक्तियो को वशीभूत करके परमेश्वर पद को प्राप्त करने के लिए निरन्तर सचेष्ट है। उसकी ऊर्ध्वमुखी चेतना आध्यात्मिक वातावरण मे साँस लेती है, किन्तु पक से उत्पन्न कमल की तरह उसकी जड सत्ता सासारिक वातावरण से अलग नही है। इसीलिए ससार के अप्रतिम

सौन्दर्य को भी तिरस्कृत करके अपने साधना-मार्ग पर अटल रहने वाले मुनि के प्रति पाठक अपनी पूरी श्रद्धा दे पाता है । जैन शृ गार-वर्णन के इस विवरण से इतना स्पष्ट हो जाता है कि धार्मिक काव्यो मे जिनका मुख्य उद्देश्य भक्ति का प्रचार था, शृ गार कभी उपेक्षित नही रहा, वल्कि इन वर्णनो से तो इसकी अतिशयता का भी पता चलता है ।"[1]

इस उद्धरण से जो तथ्य जैन कवि के सम्वन्ध मे कहे गये है, वे जैन कथाकार के विपय मे भी पूर्ण रूप से लागू होते है ।

जैन कथाकारो ने मानव की सहज प्रवृत्तियो का भी वडी सहृदयता से चित्रण किया है । दीन हीन की व्यथा क्या होती है आराध्य के प्रति आराधक की भक्ति मे कितनी प्रगाढता रहती है ? सघर्षो से जूझने की दृढता जैन तपस्वियो मे अगाध है । काम-क्रोध, मान, माया, लोभ के वशीभूत होकर प्राणी कितना अधम बन जाता है आदि की अभिव्यजना जैन कहानियो मे स्वाभाविक रूप से हुई है । विविध रसो का परिपाक इन कहानियो मे इस रूप मे हुआ है कि पाठक, एव श्रोता प्रभावित हुए विना नही रह सकता । पलायनवादी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कथाकारो ने यथार्थवाद के धरातल पर आदर्शवाद की सुदृढ स्थापना की है । उदात्त चरित्रो की सृष्टि ने मानव की हीन भावनाओ की रेखाओ को अस्तित्वहीन वना दिया है । स्वस्थ सामाजिक, धार्मिक एव राजनैतिक वातावरण ने युग की मान्यताओ को पर्याप्त परिपुष्टि प्रदान की है । इन कथाओ मे अभिव्यजित भावनाओ की गहनता, मार्मिक सवेदना तथा विश्व-वन्धुत्व की कामना इतनी गहरी रेखाओ मे उभरी हैं कि युग-युगो तक इन कहानियो की लोकप्रियता जीवित रहेगी ।

भाव पक्ष की भाँति इस कथा साहित्य का कला पक्ष भी वडा सुन्दर एव भव्य है । साहित्य की एक प्रमुख विधा कहानी है, जिसके द्वारा साहित्य का सतुलित तथा मनोरम रूप निखरता है । सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रशादि भाषाओ मे अनूदित इन जैन कहानियो मे वडी सरल भाषा अपनाई गई है । प्रान्तो एव नगरो आदि के विवरण इतने सुन्दर प्रस्तुत किये गए हैं कि सामान्य पाठक एव श्रोता भी सहज मे ही प्रभावित हो उठना है । इन वर्णनो मे मुहावरेदार आलकारिक एव लोकोक्तियो से सम्पन्न भाषा वडी सुहावनी लगती है । सुवोध और सरस शैली मे लिखित ये कथाएँ जन-जीवन की विशि-

---

1. विद्यापति—ले० श्री शिवप्रसाद सिह, पृष्ठ ११० तथा ११३–११४

ष्ट धरोहर है । यहाँ कुछ वर्णन प्रस्तुत किये जाते हैं जो भाषा की दृष्टि से पठनीय है—

(१)

इस भरत क्षेत्र मे काशी नामक प्रदेश है जहाँ हाथियो के झुण्ड विचरण करते है और जहाँ सरोवर कमल-पुष्पो से शोभायमान हो रहे हैं। वे चकवो को धारण करते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे रथी अपने रथो के चक्को को धारण किये हो । इस प्रदेश की सरिताओ मे प्रचुर पानी बहता रहता हैं और इस प्रकार वे उन शूल व कृपाणधारी वीराङ्गनाओ का अनुसरण करती हैं जिनके शस्त्रो की धारे खूब पानीदार अर्थात पैनी है । वहाँ के सघन वन-उपवन सरस फलो से व्याप्त है जिनका शुक चुम्बन करते हैं, इसी प्रकार यहाँ की पुरनारियो के मुख कमल लावण्ययुक्त हैं जिनसे वे अपने पुत्रो के मुखो का खूब चुम्बन करती है । वहाँ के ग्रामीण किसान जब अपसे काँस के खेतो को जोतने के लिए हलो को हाथ मे लेकरे चलते हैं तब वे विष्णु और हलधर (वलभद्र) के समान दिखाई देते है ।

(सुअध दहमी कहा—का हिन्दी अनुवाद)

जिस अवन्ति देश मे पुण्यवान् पुरुषो के गृह धनादि लक्ष्मी के साथ और लक्ष्मी पात्रदान के साथ एव पात्रदान सन्मानादि विधि के साथ स्वाभाविक स्नेह प्राप्त करते है । जिस प्रकार क्षीर समुद्र के तटवर्ती पर्वतो के समूह उसकी तरगो से सुशोभित होते है उसी प्रकार वहाँ के गृह भी क्रीडा करते हुए बछडो के समूह से शोभायमान होते थे ।

यशस्तिलक चम्पू काव्य—द्वितीय आश्वास पृष्ठ १०४

वैशाख कृष्ण दशमी को श्रवण नक्षत्र और शुभ दिन मे तीन ज्ञान धारी पुत्र का जन्म हुआ । जिस प्रकार पूर्व दिशा प्रचण्ड तेजस्वी निर्भय सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार माता ने महान् तेजस्वी तथा ससार मे ज्ञान का प्रकाश करने वाले पुत्र को जन्म दिया । पुत्र के जन्म समय सभी दिशाएँ निर्मल हो गयी, आकाश स्वच्छ हो गया, शीतल हवा बहने लगी । कुटुम्ब मे अत्यन्त हर्ष हुआ, घर-घर मे गीत-नृत्य होने लगे । मनोहर बाजे बजने लगे । स्वर्ग मे घटानाद, ज्योतिलोक मे सिंहनाद, व्यन्तरो के यहाँ दुन्दुभिनाद और भवनवासियो के यहाँ शखनाद होने लगा । चतुर्निकाय के देवो के यहाँ पारिजात आदि फूलो की वर्षा हुई तथा बाजे बजने लगे । देवो के मुकुटो मे चमक

अधिक आ गई उन्होने अवधि ज्ञान से जान लिया कि भगवान् तीर्थ कर का जन्म हुआ है ।

(भगवान मुनिसुव्रतनाथ का जन्मोत्सव)

रामचरित (भट्टारक सोमसेन विरचित रामपुराण का हिन्दी अनुवाद) पृ ७३

यह कहना उचित ही है कि साहित्य के विशद परिवेश मे जो स्वाभाविक वर्णनो एव चित्रणो की उपलब्धि हुई है, उसका बहुत कुछ श्रेय कथा साहित्य को दिया जा सकता है । भावनात्मक एव क्रियात्मक असाम्प्रदायिकता जो साहित्य मे प्राप्त है, वह इन कथाओ के सहारे ही यहाँ अकुरित, पल्लवित, एव फलित हुई है । इस प्रकार हम देखते है कि जैन कथाओ का साहित्यिक महत्व विविध दृष्टिकोणो से चिरन्तन तथा सार्वभौम है ।

जैन-कथाओं में समुद्र-यात्राएँ

पुरातन जैन-कथाओ के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल मे व्यापार अनेक असुविधाओ के होने पर भी उन्नत था। व्यापारी लोग दूर-दूर देशो मे जाकर माल बेंचते और खरीरते थे। मार्ग सुरक्षित न थे और चोर-डाकू व्यापारियो को सताते और उनके धनादि का अपहरण करते रहते थे। अनेक कष्टो को झेलते हुए भी व्यापारियो का दल जल-थल यात्रा करता था। तथा विविध देवो-देवताओ की अर्चना करके अपने मन्तव्यो की पूर्ति की कामना से अपनी वैभव वृद्धि मे सफल होता था।

इन यात्राओ (सामुद्रिक यात्राओ) से विदित होता है कि व्यापारिक केन्द्र बडे नगरो मे होते थे और कई द्वीपो से रत्नादि की प्राप्ति भी होती थी। कुशल व्यापारी साहस के साथ जल यात्राएँ करते थे। धनोपार्जन के साथ-साथ अनुभव मे भी वृद्धि करते थे एव कौनसी वस्तु कहाँ प्राप्त होती है और कौन से पदार्थ की माग कहाँ है इन सब व्यापारिक तत्वो को समझ कर अपनी श्री वृद्धि करके सन्तुष्ट होते थे।

इन समुद्र यात्राओ के उपलब्ध विवरण यह भी बताते है कि व्यापारी तूफानो से किस प्रकार जूझते थे, तथा विपत्ति के क्षणो मे सामूहिक सहयोग और दृडता से किस प्रकार अगाध जल-राशि की क्षुब्ध धारा को शान्त वातावरण मे परिवर्तन कर देते थे। जल-देवता की पूजा जल यात्रा प्रारम्भ करते समय अनिवार्य रूप से की जाती थी और सफल यात्रा की खुशी मे जल-देवता को पूर्ण आस्था से धन्यवाद भी दिया जाता था।

कई ऐसे दु खद अवसरो पर जब व्यापारी लोग जहाज के टकराने पर जल की धारा के साथ तैरते हुए दिखाई देते, तब जल-देवी-दयावती बनकर पीडित व्यक्तियो की सहायता करती थी । "जैन साहित्य मे यात्री और सार्थ-वाह" शीर्षक निवन्ध मे डा० मोतीचन्द्र लिखते है —"जैन धर्म मुख्यत व्या-पारियो का धर्म था और है और इसलिए जैन धर्म-ग्रन्थो मे व्यापारियो की चर्चा आना स्वाभाविक है । व्यापार के सम्बन्ध मे जैन साहित्य मे कुछ ऐसी परिभाषाएँ आयी है जिन्हे जानना इसीलिए आवश्यक है कि और दूसरे साहित्यो मे प्राय ऐसी व्याख्याएँ नही मिलती । इन व्याख्याओ से हमे यह भी पता चलता है कि माल किन किन स्थानो मे बिकता था तथा प्राचीन भारत मे माल खरीदने वेचने तथा ले जाने ले आने के लिए जो बहुत सी मडियाँ होती थी उनमे कौन कौन से फरक होते थे । जैन साहित्य से पता चलता है कि राजमार्गो पर डाकुओ का वडा उपद्रव रहता था । विपाक-सूत्र मे विजय नाम के वडे साहसी डाकू की कथा है । चोर पल्लिया प्राय वनो खाइयो और वसवारियो से घिरी और पानी वाली पर्वतीय घाटियो मे स्थित होती थी ।

अपने धार्मिक आचारो की कठिनता के कारण जैन साधु तो समुद्र यात्रा नही करते थे, पर जैन सार्थवाह और व्यापारी बौद्धो की तरह समुद्र यात्रा के कायल थे । इन यात्राओ का वडा सजीव वर्णन प्राचीन जैन-साहित्य मे आया है । आवश्यक चूर्णि से पता चलता है कि दक्षिण-मदुरा से सुराष्ट्र को बराबर जहाज चला करते थे । एक जगह कथा आई है कि पडु मथुरा के राजा पडुसेन की मति और सुमति नाम की दो कन्याएँ जब जहाज से सुराष्ट्र को चली तो रास्ते मे तूफान आया और यात्री बचने के लिए रुद्र और स्कन्ध की प्रार्थना करने लगे ।

समुद्र यात्रा के कुशलपूर्वक होने का बहुत कुछ श्रेय अनुकूल वायु को होता था । निर्यामको को समुद्री हवा के रूखो का कुशल ज्ञान जहाजरानी के लिए बहुत आवश्यक माना जाता था । हवाएँ सोलह प्रकार की मानी जाती थी । यथा—१ प्राचीन वात (पूर्वी) २ उदीचीन वात (उत्तराहट) ३. दाक्षिणात्य वात (दखीनाहट) ४ उत्तर पौरस्त्य (सामने से चलती हुई उतराहट) ५. सत्वासुक (शायद चौ आई) ६ दक्षिण पूर्व तु गार (दक्खिन पूरब से चलती हुई जोरदार हवा को तु गार कहते थे) ७ ऊपर दक्षिण बीजाय ८ ऊपर बीजाय ९ अपरोत्तर गर्जन (पश्चिमोत्तरी तूफान) १० उत्तर सत्त्वासुक ११ दक्षिण सत्त्वासुक १२ पूर्व तु गार १३ दक्षिण

बीजाय १४ पश्चिम बीजाय १५ पश्चिमी गर्जभ १६ उत्तरी गर्जभ (श्री सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ से साभार)"

यहा जैन कथाओ के कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते है जिनका सम्बन्ध समुद्र यात्राओ से है। इनसे स्पष्ट होता है कि सागर यात्राएँ कितनी कष्ट-प्रद एव विषमता पूर्ण होती थी साथ ही साथ ये यात्राएँ यह भी बताती है कि पुरातन काल मे भारतीय व्यापार बडा समृद्ध था तथा इस विशाल श्री सम्पन्न देश मे सुगन्धित द्रव्य, मनोरम वस्त्र, रत्न, खिलौने आदि बाहर जाते थे और बहुत से सुरभित पदार्थ, रत्न, सुवर्ण आदि अन्य देशो से इस देश मे आते थे। इन जल-निधि यात्राओ से यह भी प्रकट होता है कि वर्तमान काल की भाँति प्राचीन काल मे भी व्यापारी नियमित कर नही चुकाते थे और चोरी से माल का निर्यात भी करते थे।

भविष्यदत्त का भाई बधुदत्त व्यापार कर जहाजो मे बहुत सा माल खजाना लाद कर लौट रहा था कि मार्ग मे सबका सब माल चोरो ने लूट लिया। भविष्य दत्त की कथा पुण्याश्रव कथाकोष पृ, २३०

—उसके बाद चारुदत्त के मामा ने कहा–कि मेरे पास सोलह करोड का द्रव्य है सो तुम उसे लेकर काम-काज चलाओ और कुछ चिन्ता मत करो। चारुदत्त ने कहा व्यापार अन्य देशो मे अच्छा हो सकता है यहाँ पर नही। सिद्धार्थ और चारुदत्त व्यापार करते हुए प्रियगुवेला नगर मे गए। वहाँ चारुदत्त के पिता भानु का सुरेन्द्रदत्त नाम का मित्र रहता था। वह इन दोनो को द्वीपान्तर व्यापार के लिए ले गया। बारह वर्ष मे असीम द्रव्य कमाया। उसको लेकर दोनो घर को लौट रहे थे कि अचानक समुद्र मे जहाज फट गया। बहते हुए लकडी के टुकडो का सहारा पाकर बडी कठिनता से दोनो प्राण बचाकर किनारे आ लगे।

(अर्द्धदग्ध पुरुष और बकरे की कथा–पुण्याश्रव कथाकोष पृष्ठ ८२)

चम्पा नगरी मे माकन्दी नाम का एक बडा व्यापारी रहता था। उसके जिन पालित और जिन रक्षित दो पुत्र थे। माकन्दी के दोनो पुत्र बडे चतुर और बडे साहसी थे। उन्होने लवण समुद्र (हिन्द महासागर की ग्यारह बार यात्रा कर बहुत सा धन सचित किया था। एक बार जिन पालित और जिन रक्षित ने सोचा कि एक बार फिर से समुद्र यात्रा कर धन कमाना चाहिए। माता-पिता के विरोध करने पर भी ये दोनो अपनी नाव मे बहुत सा माल भरकर विदेश को चल दिये। कुछ दूर पहुँचने पर आकाश मे बादल घिर आए, बादल गरजने लगे, बिजली कडकने लगी और हवा चलने लगी। देखते

देखदे नाव उछलने लगी। उसके तख्ते टूटकर गिरने लगे, जोडे फटने लगी, कीले गिरने लगी, नाव की रस्सियाँ टूट गयी, पतवारे जाती रही, ध्वजा के डण्डे नष्ट हो गए। नाव एक पहाड से टकराकर चूर-चूर हो गयी। माल असबाव समुद्र मे डूब गया और व्यापारियो को अपने प्राणो से हाथ धोना पडा। (माकन्दी पुत्रो की कहानी--दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ--ले० डॉ० जगदीश चन्द्र जैन)

ज्ञात धर्म की दो कथाओ से भी प्राचीन भारतीय जहाजरानी पर काफी प्रकाश पडता है। एक कहानी मे कहा गया है कि चम्पा मे समुद्री व्यापारी (नाव वार्पणि याग) रहते थे। ये व्यापारी नाव द्वारा गणिम (गिनती) धरिम (तौल) परिच्छेद्य तथा मेय(नाप) की वस्तुओं का विदेशो से व्यापार करते थे। चम्पा से यह सब माल बैल-गाडियो पर लाद दिया जाता था। यात्रा के समय मित्रो और रिस्तेदारो का भोज होता था। व्यापारी सबसे मिल मिलाकर शुभ मुहूर्त मे गभीर नाम के बदर (पोयपत्तण) की यात्रा पर निकल पडते थे। बन्दरगाह पर पहुच कर गाडियो पर से सब तरह का माल उतार कर जहाज पर चढाया जाता था और उसके साथ ही खाने-पीने का सामान जैसे चावल, आटा, तेल घी, गोरस, मीठे पानी की दोडियाँ, औषधियाँ तथा वीमारो के लिए पथ्य भी लाद दिये जाते थे। समय पर काम आने के लिए पुआल, लकडी, पहनने के कपडे, अन्न, शस्त्र तथा बहुत सी बस्तुएँ और कीमती माल भी साथ मे रख लिये जाते थे। जहाज छूटने के समय व्यापारियो के मित्र और सम्वन्धी शुभकामनाएँ तथा व्यापार मे पूरा फायदा करके कुशल पूर्वक लौट आने की हार्दिक इच्छा प्रकट करते थे। व्यापारी समुद्र और वायु की पुष्प और गध द्रव्य से पूजा करने के वाद मस्तूलो पर पताकाएँ चढा देते थे जहाज छूटने के पहले वे राजाज्ञा भी ले लेते थे। मगल वाद्यो की तुमुल ध्वनि के बीच व्यापारी जहाज पर सवार होते थे।" (जैन साहित्य मे यात्री और सार्थवाह' शीर्षक निवन्ध से साभार)

एक दूसरी कहानी मे कहा गया है कि सामूहिक विपत्तियो के समय व्यापारी स्नानादि करके इन्द्र और स्कन्द की पूजा किथा करते थे।

ऐसी सैंकडो जैन-कथाएँ है जिनमे समुद्र-यात्राओ के वडे रोचक वर्णन प्रस्तुत किए गए है। कई कथाओ मे पोत निर्माण कला का भी उल्लेख हुआ है। इन कहानियो से यह भी ज्ञात होता है कि इस देश मे विदेशो के दास दासियो की अच्छी खपत थी तथा यहाँ के हाथी दाँतो की दूरस्थ देशो मे अच्छी माग थी। कतिपय कथाएँ बताती है कि इस देश मे वाहर से आए

सुन्दर एव वलिष्ट अश्वो की ओर यहाँ राजा-महाराजाओ का अधिक आकर्षण था ।

कुछ ऐसी भी प्राकृत एव अपभ्र श जैन-कथाएँ उपलब्ध होती है जिनसे विदित होता है कि जहाजो द्वारा भेजे गए एव लाए गए माल की वन्दरगाहो पर पूरी जाच होती थी और कर की वसूली कठोरता से की जाती थी । जो माल राजाज्ञा के अभाव मे इधर-उधर भेजा जाता था, जाच करने पर वह जब्त कर लिया जाता था एव सम्वन्धित व्यापारी को नियमानुसार दडित भी किया जाता था ।

इन सामूहिक यात्राओ ने हमारी सस्कृति एव सभ्यता को भी प्रभावित किया था । वाह्य देशो के सम्पर्क से हमारी विचार-धारा परिपुष्ट हुई थी एव सकुचित मान्यताओ मे विकास की भावनाएँ अकुरित हुई थी । इस प्रकार व्यापारिक अभिवृद्धि के साथ-साथ इन सागर-यात्राओ के माध्यम से हमारी सास्कृतिक गरिमा भी दूरस्थ देशो मे प्रतिष्ठित हुई ।

हैं। यह रूप की प्यास कभी मिटती ही नही है। कविवर विहारी के शब्दो मे छवि का छाक और सब नशो से बडा विषम होता है—

उर न टरै, नीद न परै, हरै न काल-बिपाकु
छिनकु छाकि उछकै न फिरि, खरौ विषमु छवि-छाकु।

(विहारी-रत्नाकर पृ ३१८)

'जिगर' साहब इस नशे की तारीफ करते हुए कहते है—

यह नशा भी क्या नशा है,
कहते है जिसे हुस्न।
जब देखिए कुछ नीद सी,
आँखो मे भरी है।
(हुस्न=सौन्दर्य)

कवि प्रसाद ने सौन्दर्य को चेतना का उज्वल वरदान कहा है—

उज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमे अनन्त अभिलाषा के,
सपने सब जगते रहते है।

(कामायनी)

"सौन्दर्य की परिभाषा के सम्बन्ध मे विभिन्न मत है। गार्टेन सौन्दर्य-शास्त्र के जनक माने जाते है। उनके मतानुसार तार्किक ज्ञान का लक्ष्य सत्य है और रागात्मक ज्ञान का लक्ष्य सौन्दर्य है। सल्जर, मौलि आदि के मत गार्टेन के मत के प्रतिकूल हैं। वे कला का लक्ष्य सौन्दर्य नही पर शिव मानते हैं और इसलिए वे उसी वस्तु मे सौन्दर्य मानने है जो शिव-समन्वित हो। उनके मतानुसार मानव-जीवन का लक्ष्य समाज कल्याण है, जिसकी प्राप्ति नैतिक भावनाओ के सस्कार से ही सभव है। सौन्दर्य इसी भावना को जाग्रत और सस्कृत करने का कार्य करता है। इनका दृष्टिकोण सुन्दर शरीर मे सुन्दर आत्मा के सिद्धान्त का समर्थक है। बकेलमेन समस्त कला का विधान और लक्ष्य केवल सौन्दर्य को मानते और सौन्दर्य को रूप सौन्दर्य विचार सौन्दर्य तथा अभिव्यक्ति सौन्दर्य के रूप मे विभाजित करते है। जर्मन विद्वानो ने सौन्दर्य को एक ऐसी वस्तु समझा है जो निर्विकल्प रूप से स्थित है और न्यूनाधिक प्रमाण से शिव युक्त है। 'होम' सौन्दर्य उसे मानते है जो सुखद हो।

अत सौन्दर्य की परिभाषा रुचि के अधीन है। फ्रेंच विद्वानो का भी यही मत है। काण्ट के मतानुसार सौन्दर्य वह है जो बिना किसी तर्क या व्यावहारिक लाभ के सदैव निश्चित रूप से आनन्द प्रदान करता हे। यगमैन वस्तुओ के इन्द्रियातीत गुण को सौन्दर्य समझते है। तेन के अनुसार सौन्दर्य किसी महत्वपूर्ण विचार के अनिवार्य लक्षण का पूर्णतम प्रकाशन है।"[1]

बाह्य सौन्दर्य और आन्तरिक सौन्दर्य इस प्रकार दो रूपों मे विभाजित सौन्दर्य के कुछ आवश्यक गुण भी माने गए है। काव्य मे जिस समन्वित सौन्दर्य की सृष्टि होती है उसके छः आवश्यक गुण आधुनिक सौन्दर्य शास्त्र मे माने गए है। वे है (१) समतुल्यता (२) सगति या सम्यकता (३) ताल (४) सन्तुलन (५) अनुपात और (६) एकता।'[2]

सतत सुख का जनक सौन्दर्य तो सद्य व प्रतिक्षण वर्द्धमान है विकाशशील है, यदि वह ऐसा नही है तो उसे हम सौन्दर्य नही कह सकते है। सस्कृत के महाकवि माघ ने भी इस तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया हे— क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूप रमणीयताया।' पल-पल मे विकासोन्मुख सौन्दर्य की भावना को रीतिकाल के सुप्रसिद्ध महाकवि बिहारी ने एक अकुरित–यौवना नायिका की क्षण-क्षण मे बढती हुई शरीर काति की सखी द्वारा प्रशसा कराकर इस प्रकार अभिव्यजित किया है :—

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर

(बिहारी रत्नाकर ३४७)

भला मै बेचारी उसकी प्रतिक्षण बढती हुई शोभा का वर्णन क्या कर सकती हू, जिसका यथार्थ चित्र लिखने के निमित्त घमड तथा अभिमान से भर-भर कर बैठे जगत के कितने चतुर चितेरे असफल हुए है। बाह्य सौन्दर्य चित्रण मे कवियो एव कलाकारो ने अलकारादि को भी अपनाया है। कतिपय सौन्दर्य प्रेमी काव्यकारो ने खूबसूरती के लिए भूषणो को अनावश्यक बताया है– स्वय सुन्दरता के अनन्य प्रेमी बिहारी ने सोने के गहनो को दर्पण के मोरचे एव पावदान के रूप मे कहा है—

---

1. साहित्यिक निबन्ध ले० डॉ० कृष्णलाल (सूरसाहित्य मे सौन्दर्य भावना–पृष्ठ १२८)
2. साहित्य का विश्लेषण–ले० डॉ० वासुदेव नन्दन प्रसाद पृष्ठ ७१

पहिरि न भूपन कनक के, कहि आवत इहि हेत ।
दरपन के से मोरचे, देत दिखाई देत ।
(बि रत्नाकर २३५)

मानहु विधि तन-अच्छ छबि, स्वच्छ राखिबै काज ।
दृग-पग-पोछन कौं करे, भूषन पायदाज ।
(बि रत्नाकर ४१३)

लेकिन केशवदास, देव आदि कुछ ऐसे भी रसिक कवि है जिन्हे अनलकृत कामिनी का सौन्दर्य सलौना नही लगता है। यदि अर्थालकार-विहीना सरस्वती इन्हे विधवा के समान असुन्दर लगती है (अर्थालकार रहिता विधवैव सरस्वती) तो फिर भूषणो से रहित वनिता का इन काव्यकारो की दृष्टि मे अशोभना प्रतीत होना स्वाभाविक ही है—

जदपि सुजाति सुलच्छनी,
सुवरन सरस सुवृत्त ।
भूषन विनु न विराजई,
कविता बनिता मित्त । (केशवदास)
कविता कामिनि सुखद पद,
सुवरन सरस सुजाति ।
अलकार पहिरे अधिक,
अद्भुत रूप लखाति (देव)

बाह्य साज-सज्जा सौन्दर्य के निखार मे कुछ अशो तक अवश्य सहायक बनती है। गोरे रग पर श्याम साडी आकर्षक लगती ही है। इसी प्रकार नील परिधान भी तो गोरी गर्वीली कामिनि के सौन्दर्य मे अभिवृद्धि करता ही है। नारी-सौन्दर्य चित्रण मे सिद्धहस्त कविवर प्रसाद ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य कामायिनी मे श्रद्धा की सुन्दरता का वडा ही आकर्षक चित्रण किया है, और उसमे बाह्य साज-सज्जा को भी अपनाया है—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अग ।
खिला हो ज्यो बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रग ।

खूबसूरती को अधिक वाचाल बनाने मे हाव-भाव, अदा, नाजो-नजाकत आदि का भी उल्लेख्य सहयोग माना गया है। प्राय समस्त कवियो एव

कलाकारो ने सौन्दर्य चित्रण मे कामिनी के हाव-भावो को अधिक मनोयोग से अकित किया है। उर्दू के शायरो की शायरी तो इस सदर्भ मे भुलाई नही जा सकती है—

दरियाए-हुस्न और भी दो हाथ बढ गया।
अँगडाई उसने नशे मे ली जब उठा के हाथ। नासिर

अँगड़ाई भी वह लेने न पाये थे उठा के हाथ।
देखा जो मुझको छोड दिए मुस्करा के हाथ। निजाम रामपुरी,

मुहब्बत हर किसी के दिल मे
करलेती है घर अपना।
कभी-तिर्छी नजर होकर,
कभी-सीधी नजर होकर।

(अज्ञात)

जैन कथाओ मे सौन्दर्य का चित्रण उनके रूपो मे हुआ है। वाह्य सौन्दर्य को आकर्षक रीति से चित्रित करते हुए इन जैन कथाकारो ने भाव सौन्दर्य का भी वडी तत्परता से अभिव्यजित किया है। वाह्य सौन्दर्य एव अन्त: सौन्दर्य एक दूसरे के पूरक है। रूप सौन्दर्य (वाह्य सौन्दर्य) को अकित करते हुए इन जैन कथाकारो ने उपमा, उदाहरण, रूपक, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो को पर्याप्त मात्रा मे उपयोग किया है। इस रूप-चित्रण मे सुन्दरता का पार्थिव रूप विशेपत' प्रस्फुटित हुआ है। इस सम्बन्ध मे वहुमूल्य वेशभूषा की भी कहानीकारो ने चर्चा की है। यहाँ अग-प्रत्यगो के लालित्य की तीव्रतम अभिव्यक्ति हुई है। भाषा की मृदुलता के साथ-साथ उपमाओं की मनोरमता एव कल्पनाओ की अभिनव और रम्य उडान दृष्टव्य है।

आयु के परिवर्तन से सुन्दरता मे जो नूतन उन्मेष परिलक्षित होता है, उसे भी इन कथाकारो ने बडी सजगता और तल्लीनता से चित्रित किया है। इस सौन्दर्याभिव्यक्ति मे परमपूज्य तीर्थंकर, तीर्थकरो की महाभाग्य शालिनी जननी, साध्वी, नृपति, महिषी, कामिनी, नवोढा, अकुरित यौवना, प्रेमी, प्रेमिका आदि सवको समुचित गौरव प्राप्त हुआ है। चेतन सौन्दर्य के साथ इन कथाओ मे अचेतन सुन्दरता की भी यथावसर अभिव्यजना हुई है। यह चेतना-विहीन सौन्दर्य बडा आकर्षक होता है। स्थापत्य कला की खूवसूरती से देवता भी तो आकृष्ट होते है। विशाल जिनालयो के दर्शनार्थ स्वर्गलोक के निवासी सुरादि सदैव लालायित रहा करते हैं। प्रणम्य जिन प्रतिमाओ का भाव-सौन्दर्य एव वाह्य सौन्दर्य कितना प्रभावोत्पादक होता है, इसे कला

विद् एव भक्त भली भाँति जानते है। यहाँ सौन्दर्य विषयक कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाने है।

भगवान ऋषभदेव के सौन्दर्य का वर्णन—

'भगवान के छत्राकार मस्तक पर काले-काले घू घरवाले केश रूपाचल की शिखर पर जडी हुई नीलमणियो की शोभा धारण करते थे। उनके ललाट नाक, कमल के नाल दण्डो के समान लबायमान कान चढे हुए धनुष के समान दोनो भोये इतने कमनीय थे कि उनका वर्णन करना भी कठिन है। उनके दोनो नेत्र और श्रोत्र कमल दल के समान सुन्दर थे। दाँत अतिशय निर्मल मोती सरीखे थे अत्यन्त चमकीले सम और छोटे-छोटे थे एव सफेद कुन्द पुष्प की शोभा धारण करते थे।' (हरिवश पुराण पृष्ठ १२६)

महारानी मरुदेवी की सुन्दरता का चित्रण—

रानी मरुदेवी साक्षात समुद्र की लहर जान पडती थी, क्योकि समुद्र की लहर मे जिस प्रकार शख, मूँगे, और मुक्ता फल होते हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी शख के समान गोल ग्रीवा थी, अधर पल्लव मनोहर मूँगे और दाँत दैदीप्यमान मुक्ताफल थे। उनके वचन कोकिला के शब्द के समान मिष्ट जान पडते थे। उनके दोनो नेत्र श्वेत-श्याम और रक्त तीन वर्ण वाले कमल के समान सुन्दर थे—

(हरिवश पुराण पृष्ठ १११–११२)

साध्वी का सौन्दर्य चित्रण

पुष्पो के समान कोमल भुजारूपी लताओ से मडित वह कन्या जो भूषण और माला आदि पहने थी, उसने सब उतार दिये और अपने हाथ की उगलियो से मनोहर केशो को उखाडती हुई ऐसी जान पडने लगी मानो हृदय से भयकर शल्य समूह को उखाड रही है। उसके जघन वक्ष स्थल, स्तन, उदर और शरीर एक श्वेत वस्त्र से ढके थे इसलिए उस समय वह श्वेत बालु से युक्त निर्मल जल से भरी हुइ शरद ऋतु की नदी सरीखी जान पडती थी।

(हरिवश पुराण पृष्ठ ४६०)

एक कामिनी की सुन्दरता का अकन

स्त्रियो के मध्य मे एक अतिशय मनोहर साक्षात् रति के समान स्त्री बैठी थी। अचानक ही उस पर राजा की दृष्टि पड गई। उसका मुख चन्द्रमा

के समान था। नेत्र कमल के समान थे। दोनो ओष्ठ बिंबाफल सरीखे और कठ शख तुल्य था। उसके स्तन चक्रवाको की उपमा को धारण करते थे। कटिभाग अतिशय कृश था, नाभि अत्यन्त गहरी थी। दोनो जघाएँ सुघटित थी। नितम्ब कुदरू फल से तुलना करते थे। उसके दोनो चरण विशाल उरु सुन्दर जघा एव पार्ष्णियो से अतिशय शोभायमान थे।

(हरिवश पुराण पृष्ठ १७२)

एक वेश्या के चचल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति

उसके प्रकम्पित कर्ण युगल मानो कामदेव के हिंडोले थे। चचल उर्मियो से आपूरित नयन कचोले, सुन्दर विपैले फूल की तरह प्रफुल्लित कपोल वालि, शख की तरह सुडौल, सुचिक्कण निर्मल कठ, उसके उरोज शृगार के के स्तवक थे। मानो पुष्पधन्वा कामदेव ने विश्व विजय के लिए अमृत कुम्भो की स्थापना की थी। नव यौवन से विहँसती हुई देह वाली, प्रथम प्रेम से उल्लसित रमणी अपने सुकुमार चरणो के अशिक्षित पायल की रुनझुन से दिशाओ को चैतन्य करती हुई मुनि के पास पहुची। वेश्या ने अपने हाव भाव से मुनि को वशीभूत करने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु मुनि का हृदय उस तप्त लोहे की तरह था जो उसकी बात से बिध न सका।

(मुनि स्थूलभद्र की कथा)

सुर्दशना नाम की पालकी की सुन्दरता का उल्लेख

उस समय वह सुदर्शना आकाश और उत्तम स्त्री के समान जान पडती थी। क्योकि जिस प्रकार आकाश अतिशय चमकीले ताराओ और नक्षत्रो की शोभा से दैदीप्यमान रहता है और उत्तम स्त्री ताराओ के समान चमकीले रत्नो की प्रभा से दैदीप्यमान रहती है उसी प्रकार पालकी भी चौतर्फा जडे हुए तारो के समान चमकीले रत्नो से दीप्त थी। आकाश चचल चामरो के समूह के समान हस-पक्तियो से दैदीप्यमान एव उज्वल रहता है और स्त्री चामरो के समूह तथा हस पक्ति के समान उत्तम वस्त्रो से उज्ज्वल रहती है, पालकी भी हस पक्ति के समान चचल चमर और उत्तम वस्त्र से मनोहर थी। आकाश सूर्य मडल के तेज से समस्त दिशाओ को प्रकाशित करने वाला होता है, और स्त्री दर्पण के समान अखड दीप्ति से युक्त मुख वाली होती है, उसी प्रकार पालकी भी चारो ओर लगे हुए अनेक मणिमयी दर्पणो के प्रकाश से समस्त दिशाओ को प्रकाशमान करती थी। आदि-आदि।

(हरिवश पुराण पृष्ठ १३०)

इसी प्रकार कई जैन-कथाओ मे पशु पक्षियो, सर-सरिताओ ,देवालयो, प्रासादो आदि की सुन्दरता का आकर्षक चित्रण किया गया है।

इस सौन्दर्य-चित्रण के सदर्भ मे यह लिखना अप्रास गिक न होगा कि सुन्दरता को मुखरित करने वाले ये विवरण एक प्राचीन परम्परा पर ही विशेषत आधारित है। वे ही उपमानादि यहाँ पर चर्चित है जो प्राचीन कथा काव्यो मे अपनाए गए हैं। यत्र-तत्र कुछ नवीन उपमानो एव कल्पना-प्रसूत मौलिक उद्भावनाओ की अभिव्यक्ति अवश्य हुई है जिससे जैन-कथाकारो का सास्कृतिक वैशिष्ठ्य अभिव्यजित होता है।

जैन प्रतिमाओ के वाह्य सौन्दर्य की भूमिका आन्तरिक सुषमा को देखकर अनेक कलाविद एव विद्वान प्रभावित हुए हैं और उन्होने मुक्तकठ से शिल्पी की एव उसकी छैनी की भूरि-भूरि प्रशसा की है–"मैसूर राज्य के 'हासन' जिला मे श्रवण वेल गोला, निर्वाण भूमि न होते हुए भी भगवान गोम्मटेश्वर-वाहुबली की ६० फीट ऊची भव्य तथा विशाल मूर्ति के कारण अतिशय प्रभावक तथा आकर्षक तीर्थस्थल माना जाता है। दर्शक जब भगवान गोम्मटेश्वर की विशाल मनोज्ञ मूर्ति के समक्ष पहुँच दिगम्वर शान्त जिन मुद्रा का दर्शन करता है तब वह चकित हो सोचता है ! मैं दु ख दावानल से वचकर किस महान् शान्ति स्थल मे आ गया हू । वहाँ आत्मा प्रभु की मुद्रा से बिना वाणी का अवलबन ले मौनोपदेश ग्रहण करता है। मैसूर राज्य के पुरातत्व विभाग के डायरेक्टर डा० कृष्णा एम ए, पी, एच डी लिखते हैं शिल्पी ने जैन धर्म के सम्पूर्ण त्याग की भावना अपनी छेनी से इस मूर्ति के अग-अग मे पूर्णतया भरदी है।

मूर्ति की नग्नता जैनधर्म के सर्वस्व त्याग की भावना का प्रतीक है। एकदम सीधे और उन्नत मस्तक युक्त प्रतिमा का अग विन्यास आत्म-निग्रह को सूचित करता है। होठो की दयामयी मुद्रा से स्वानुभूत आनन्द और दु खी दुनिया के साथ सहानुभूति की भावना व्यक्त होती है।[1]

जिस चरम सौन्दर्य की अभिव्यजना जिन मूर्तियो मे हुई है उसी परम पुनीत सुन्दरता की अभिव्यक्ति हमे जैन चित्रकला मे प्राप्त होती है। जैन मतानुसार वही कला सौन्दर्य श्रेष्ठ है जो हितकर हो और मानव के विचारो को उदात्त वना सके। जिनालयो की भित्ति पर चित्रित चित्रो मे जो अभि-

---

1 जैन शासन– ले० श्री सुमेर चद्र दिवाकर पृष्ठ २५५—५६

व्यजित मनोरमता है उसमे न उन्माद है और न भौतिक विलासिता की मद-भरी रेखाये है। पशु-पक्षियो, नर्त्तकियो एव घटना विशेष से सम्बद्ध मानवों की भी जो आकृतियाँ यहा विविध रगो मे चित्रित हुई है उनका सौन्दर्य जैन-सस्कृति की विशेषता से प्रभावित है। ऐसी चित्रकला की कई कथाओ मे चर्चा हुई है। जैन चित्रकला के सम्बन्ध मे चित्रकला के मान्य विद्वान श्री एन सी. मेहता ने जो उद्गार प्रकट किये है वे उस पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त होगे। वे लिखते है--जैन चित्रो मे एक प्रकार की निर्मलता, स्फूर्ति और गतिवेग है, जिससे डॉ० आनन्द कुमार स्वामी जैसे रसिक विद्वान मुग्ध हो जाते है। इन चित्रो की परम्परा अजता, ऐलोरा और सितन्नावारूल के भित्ति चित्रो की है। समकालीन सभ्यता के अध्ययन के लिए इन चित्रों से बहुत कुछ ज्ञान-वृद्धि होती है। खासकर पोशाक, सामान्य उपयोग मे आने वाली चीजे आदि के सम्बन्ध मे अनेक बाते ज्ञात होती है।[1]

इस प्रकार पार्थिव सौन्दर्य को विविध रूपो मे चित्रित कर इन कथाकारो ने इसकी निस्सारता को भी प्रमाणित किया तथा मानव को आध्यात्मिक सुख-सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए मोक्ष-मार्ग की ओर उन्मुख बनाया। उसके लिए विशिष्ट कथाओ के अन्तर्गत बारह भावनाओ की सामान्य चर्चा की गई एव अशुचि अनुप्रेक्षा के माध्यम से शारीरिक ममता को परित्याज्य बनाया।

अशुचि अनुप्रेक्षा का स्वरूप इस प्रकार है—हे आत्मन्! इस शरीर को सुगन्धित करने के उद्देश्य से इस पर जो भी कपूर, अगुरु, चन्दन, व पुष्प वगैरह अत्यन्त सुन्दर व सुगन्धित वस्तु स्थापित की जाती है वही वस्तु इसके सम्बन्ध से अत्यन्त अपवित्र हो जाती है। इसलिए गौर व श्याम आदि शारीरिक वर्णों से ठगाई गई है बुद्धि जिसकी ऐसा तू विष्ठा छिद्रो के बघन-रूप और स्वभाव से नष्ट होने वाले ऐसे शरीर को किस प्रयोजन से बार-बार पुष्ट करता है। हे आत्मन्! जो तेरा ऐसा केश पाश, जिसकी कान्ति कामदेव रूप राजा के चमर सरीखी श्याम वर्ण थी और जो जीवित अवस्था मे कमल सरीखे कोमल करो वाली कमनीय कामिनियो द्वारा चमेली व गुलाब आदि सुगधित पुष्पो के सुगन्धित तेल आदि से तेरा सन्मान करने वाले कोमल कर कमलो पूर्वक विभूषित किया जाने के फलस्वरूप शोभायमान हो रहा था, वही केश-पाश तेरे काल कलवित हो जाने पर स्मशान भूमि पर पर्वत सम्बन्धी

1. जैन धर्म—ले० प० कैलाश चंद्र जी शास्त्री पृष्ठ २७६

कृष्ण-काको के गले मे प्राप्त होने वाला हुआ। हे जीव ! दैवयोग से यदि तेरा भीतरी शरीर इस शरीर से बाहर निकल आवे तो उसके अनुभव करने की बात तो दूर रहे परन्तु यदि तू केवल कौतूहल मात्र से उसे देखने का भी उत्साह करने लगे तब कही तुझे इस शरीर मे सन्मुख होकर राग-बुद्धि करनी चाहिए अन्यथा नही। इसलिए हेय व उपादेय के विवेक से विभूषित तत्वज्ञानी पुरुष यमराज की क्रीडा करने की ओर अपनी बुद्धि को प्राप्त न करते हुए (मृत्यु होने के पूर्व) स्वाभाविक मलिन इस शरीर से कोई ऐसा अनिर्वचनीय मोक्ष फल प्राप्त करे जिससे कि अनन्त सुख रूप फल की विभूति उत्पन्न होता है।

(यशस्तिलक चम्पू द्वितीय आश्वास पृष्ठ १४८)

जैन-काव्य एव कथा साहित्य की चरम उपलब्धि अध्यात्मवाद की परिपुष्टि ही है। फलत रूप-सौन्दर्य की आकर्षक आसक्ति मे सलग्न मानव को प्रबुद्ध करके जैन कथाकारो ने एक ओर ससार की क्षणभगुरता को अभिव्यजित किया और दूसरी ओर शृागारिक साहित्य के नि सत्व को भी सशक्त शब्दो मे इस प्रकार अभिव्यक्त किया—

कचन कुम्भन की उपमा,
कहदेत उरोजन को कवि वारे।
ऊपर श्याम बिलोकतु वे मनि,
नीलम की ढकनी ढँकि छारे।
यो सत बैन कहै न कुपडित,
ये जुग आमिष पिंड उघारे।
साधन भार दई मुँह छार,
भए इह हेत किधो कुच कारे।

जैनशतक ६५

मात पिता रज वीरज सो, उपजी सब सात कुधात भरी है।
माखिन के पर माफिक बाहर, चाम के बेठन वेढ धरी है।
नाहिं तो आय लगे अब ही वक, बायस जीव बचै न घरी है।
देह दशा यहि दीखत भ्रात, घिनात नही किन बुद्धि हरी है।

ए विधि तुम तै भूलि भई,
समझै न कहाँ कसतूरि बनाई ।
दीन कुरगनि के तन मे,
तृण दन्त धरै करुना किमि काई ।
क्यों न करी तिन जीभन जे रस,
काव्य करै पर को दुखदाई ।
साधु अनुग्रह दुर्जन दड,
दोऊ सधते बिसरी चतुराई ।

जैन शनक ६६

जैन कथाओं में न्याय व्यवस्था

इन जैन कथाओ मे प्राचीन नरेशो की न्याय व्यवस्था के अनेक आदर्श उपस्थित किये गए है। हमने इस तथ्य को कई बार स्वीकार किया है कि हमारा पुरातन युग प्रशस्त था एव नरपतियो ने जिस आत्मीयता से प्रजा की सुरक्षा की है वह आज भी वरेण्य है। भले ही इन कहानियो मे चित्रित राज-व्यवस्था एक तत्रात्मक रही है फिर भी लोक तत्रात्मक शासन की कभी भी उपेक्षा नही हुई है। नरपतियो ने सदैव प्रजा को अपनी पुत्री के समान माना और उसके सुख-दु ख को अपना ही समझा। वे अपने सर्वस्व को स्वाहा करके जनता को सुखी बनाते थे और कठिन समय मे जन-सेवक के रूप मे सेवा करने के लिए तत्पर हो जाते थे।

इन नरेशो की न्याय-व्यवस्था सर्व सुलभ थी और पीडित कभी भी राज दरबार मे उपस्थित होकर अपनी कथा सुना सकता था। अपराधियो की खोज के लिए आवश्यकता पडने पर राजा कभी भिक्षुक बनकर तो कभी सामान्य व्यक्तित्व को अपनाकर इधर-उधर भटकने लगता था एव राजकीय अधिकारियो को अव्यवस्था होने पर दण्ड भोगना पडता था। अपराधियो मे किसी प्रकार का जाति-गत अथवा वश-गत विभेद मान्य न था। राज परिवार के सदस्यो को भी राज्य सभा मे उपस्थित होकर दण्ड स्वीकार करना पडता था। कई कथाएँ ऐसी प्राप्त हैं जो बताती है कि राजकुमारो को भी अपराधी सिद्ध होने पर निश्चित व्यवस्थानुसार दडित किया जाता था और किसी भी

प्रकार की सुविधा से वे लाभान्वित नही हो पाते थे। कारागारो मे ऐसे अप-
राधी राजकुमार साधारण कैदियो के समान रखे जाते थे और उन्हे कई
प्रकार से वहा भी दडित होना पडता था।

"न्याय-व्यवस्था चलाने के लिए न्यायाधीश की आवश्यकता होती
है। प्राचीन जैन-ग्रन्थो मे न्यायाधीश के लिए कारणिक अथवा रूपयक्ष
(पालि मे रूपदक्ष) शब्द का प्रयोग हुआ है। चोरी, डकैती, परदारा गमन,
हत्या और राजा की आज्ञा का उल्लघन आदि अपराध करने वालो को राज-
कुल (राउल) मे उपस्थित किया जाता था। कोई मुकद्दमा (व्यवहार)
लेकर न्यायलय मे जाता, तो उससे तीन बार वही बात पूछी जाती, यदि वह
तीनो बार एक ही जैसा उत्तर देता तो उसकी सच्ची बात मान ली
जाती थी।

दीघनिकाय की अट्ठ कथा (२, पृ० ५१९) मे वैशाली की न्याय
व्यवस्था का उल्लेख है। जब वैशाली के शासक वज्जियो के पास अपराधी
को उपस्थित किया जाता, तब सबसे पहले उसे विनिश्चय अमात्य के पास
भेजा जाता। यदि वह निर्दोष होता तो उसे छोड दिया जाता, नही तो व्याव-
हारिक के पास भेजा जाता। व्यावहारिक उसे सूत्रधार के पास, सूत्रधार
अट्ठकुल के पास, अण्टकुल सेनापति के पास, सेनापति उपराजा के पास, उप-
राजा उसे राजा के पास भेज देता। तत्पश्चात् प्रवेणी पुस्तक के आधार पर
उसके लिए दण्ड की व्यवस्था की जाती। न्याय व्यवस्था के कठोर नियम
रहते हुए भी न्याय कर्ता राजा वडे निरकुश होते और उनके निर्णय निर्दोष न
होते। साधारण सा अपराध हो जाने पर भी अपराधी को कठोर से कठोर
दण्ड दिया जाता था। अनेक चार तो निरपराधियो को दण्ड दिया जाता और
अपराधी छूट जाते थे। जातक (४, पृ० २८) मे किसी निरपराध सन्यासी
को सूली पर लटकाने का उल्लेख मिलता है। मृच्छकटिक के चारुदत्त को भी
बिना अपराध दण्ड दिया गया था।"[1]

चोरी करने पर भयकर दण्ड दिया जाता था। राजा चोरो को
लोहे की कोठे के कुम्भ मे बद कर देते, उनके हाथ कटवा देते और शूली पर
चढा देना तो साधारण बात थी। राजकर्मचारी चोरो को वस्त्रयुगल पहनाते,
गले मे कनेर के पुष्पो की माला डालते और उनके शरीर को तेल से

---

1. जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, ले० डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
पृष्ठ ६४-६५

सिक्तकर उस पर भस्म लगाते। फिर उन्हे नगर के चौराहो पर घुमाया जाता, घूँसो, लातो, डण्डो और कोडो से पीटा जाता, उनके ओठ, नाक, और कान काट लिए जाते थे, रक्त से लिप्त मास को उनके मुँह मे डाला जाता और फिर खण्ड-परह से अपराधो की घोषणा की जाती।

इसके सिवाय लोहे या लकडी मे अपराधियो के हाथ पैर बाँध दिये जाते थे। खोड मे पैर बाँध कर ताला लगा दिया जाता। हाथ, पैर जीभ सिर गले की घण्टी अथवा उदर को छिन्न-भिन्न कर दिया जाता, कलेजा, आँख, दाँत और अण्डकोष आदि मर्म स्थानो को खीचकर निकाल लिया जाता। शरीर के छोटे-छोटे टुकडे कर दिये जाते, रस्सी मे बाँध कर गड्ढे मे और हाथ बाँधकर वृक्ष की शाखा मे लटका देते थे। स्त्रियाँ भी दण्ड की भागी होती थी, यद्यपि गर्भवती स्त्रियो को क्षमा कर दिया जाता। चोरो की भाँति दुराचारियो को भी शिरोमुडन, तर्जन, ताडन, लिंगच्छेदन, निर्वासन, और मृत्यु आदि दण्ड दिये जाते थे।

चोरी और व्यभिचार की हत्या भी महान् अपराध गिना जाता था। हत्या करने वाले अर्थदिण्ड ओर मृत्युदण्ड के भागी होते ये।"[1]

"आदि पुराण स्वय एक कथाग्रन्थ है। इनमे एक ओर शासन-प्रणाली का विशद् विवरण दिया गया है तथा दूसरी ओर शासन-पद्धति को कार्यान्वित करने के हेतु दण्ड-व्यवस्था का भी उल्लेख किया गया है। दण्डाधिकारी की उस सदर्भ मे उपयोगिता बताते हुए ग्रन्थकार ने उसकी योग्यताओ की भी चर्चा की है। "दण्डाधिकारी का दूसरा नाम धर्माधिकारी भी है। आदि-पुराण मे उसको अधिकृत या अधिकारी शब्द द्वारा अभिहित किया गया है। दण्डाधिकारी राष्ट्र मे न्याय पूर्वक प्रत्येक कार्य का निर्णय करता और उस निर्णय के अनुसार लोगो को चलने के लिए बाध्य करता था। प्रशासन सम्वन्धी कार्य की देख रेख इसी के द्वारा सम्पन्न होती थी। यह पक्षपात रहित न्याय करता था। राग-द्वेष शून्य, लोभ-मोह आदि दुर्गुणो से रहित होता था। किसी भी प्रकार के प्रलोभन इसे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नही कर सकते थे। न्याय करने मे यह अपने सहयोगियो से भी सलाह लेता था। अपराधो की छानबीन करना और निष्पक्ष रूप से अपराध का दण्ड देने की घोषणा दण्डाधिकारी का कार्य था।"[2]

---

1 जैनागम साहित्य मे भारतीय समाज-ले डॉ० जैन पृष्ठ ८१–८३।

2 आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत-ले० डॉ० नेमिचन्द्र जैन पृष्ठ ३५४।

समाज सुरक्षित रहे एव उसे दुष्ट पुरुप पीडित न कर सके, इसके लिए राजा स्वय सजग रहता था और निशा मे भ्रमण कर प्रजा को आतंकित होने से बचाता था। कई कथाएँ ऐसी भी उपलब्ध होती है जो यह प्रमाणित करती हैं कि रानी राजदरबार मे नृपति के साथ सिंहासन पर बैठकर न्याय करने मे पर्याप्त सहायता देती थी और कभी-कभी अपराध की खोज के लिए विभिन्न साधनो को अपनाया करती थी। पचायतो के माध्यम से भी न्याय किया जाता था एव ग्राम का मुखिया और पचादि मिलकर पीडितो एव सन्तप्तो की रक्षार्थ अपराधियो को दण्डित कर आदर्श न्याय को उदाहरण के रूप मे स्थापित करते थे।

"शासन-व्यवस्था के लिए दण्ड परमावश्यक माना गया है। यदि अपराधी को दण्ड न दिया जाय तो अपराधो की सख्या निरन्तर बढती जायगी। एव राष्ट्र की रक्षा बुराइयो से न हो सकेगी। अपराधी को दण्ड देकर शासन व्यवस्था को चरितार्थ किया जाता है। भोगभूमि के बाद हा, मा, धिक के रूप मे दण्ड व्यवस्था प्रचलित थी, पर जैसे-जैसे अपराध करने की प्रवृत्ति बढती गयी वैसे-वैसे-दण्ड व्यवस्था भी उत्तरोत्तर कडी होती गयी। आदिपुराण द्वारा भारत मे तीन प्रकार के दण्ड प्रचलित थे जो अपराध के अनुसार दिये जाते थे—

(१) अर्थहरण दण्ड।
(२) शारीरिक क्लेश रूप दण्ड।
(३) प्राणहरण रूप दण्ड,

शासन तत्र को सुव्यवस्थित करने के लिए पुलिस का भी प्रबध था। पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी को तलवर कहा गया है, चोर, डकैत, एव इसी प्रकार के अन्य अपराधियो को पकडने के लिए आरक्षी नियुक्त रहते थे। तलवर का पर्यायवाची आरक्षण भी आया है। पुलिस अपराधी को पकड कर निम्नलिखित चार प्रकार के दण्ड देती थी।

(१) मृत्तिका भक्षण।
(२) विष्टा भक्षण।
(३) मल्लो द्वारा मुक्के।
(४) सर्वस्व हरण।

प्रजारोनो को भयावह दण्ड दिये जाते थे।" 1

---

1 आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत पृष्ठ ३६१-६२

यहाँ न्याय-व्यवस्था से सम्बद्ध कुछ कथाओ के विशिष्ट अशो का उल्लेख उदाहरणो के रूप मे किया जाता है जो उक्त कथन की परिपुष्टि मे पर्याप्त है ।

(१)

धर्माधिकारियो ने आपस मे सलाह कर कहा—'महाराज, श्रीभूति पुरोहित का अपराध बडा भारी है । इसके लिए हम तीन प्रकार की सजाये नियत करते है । उनमे से फिर जिसे यह पसन्द करे, स्वीकार करे । या तो इसका सर्वस्व हरण कर लिया जाकर इसे देश बाहर कर दिया जाय, या पहलवानो की बत्तीस मुक्कियाँ इस पर पडे या तीन थाली मे भरे हुए गोबर को यह खा जाय । श्रीभूति से सजा पसन्द करने को कहा गया । पहले उसने गोबर खाना चाहा पर खाया नही गया । तब मुक्कियाँ खाने को कहा । मुक्कियाँ पडना शुरु हुई । कोई दस-पन्द्रह मुक्कियाँ पडी होगी कि पुरोहित जी की अकल ठिकाने आ गई । आप एकदम चक्कर खाकर जमीन पर ऐसे गिरे कि पीछे उठे ही नही । वे दुर्गति मे गए । धन मे अत्यन्त लम्पटता का उन्हे उपयुक्त प्रायश्चित मिला ।' श्री भूति पुरोहित की कथा–आराधना कथाकोश दूसरा भाग पृष्ठ ३४ । (श्री भूति पुरोहित को उक्त दण्ड समुद्रदत्त के बहुमूल्य पाँच रत्न हडप करने के अपराध मे दिया गया था ।)

(२)

'इसी देश के हस्तिनापुर मे एक धनदत्त नाम का वैश्य रहता था । उसकी धनमती स्त्री से उग्रसेन नाम का पुत्र था । वह एक दिन चोरी करते पकडा गया । कोतवाल ने उसकी लात घूँसे और मुक्को से खबर ली । विकट पिटाई के कारण उग्रसेन मर गया और वह व्याघ्र हुआ ।'

(राजा वज्रजघ की कथा, पुण्याश्रव कथाकोश पृष्ठ ३१९)

(३)

"किसी ने कहा—श्री गुणसागर मुनि एक महीने का उपवास कर पारणा के लिए नगर मे गये थे । गगदत्त सेठ की स्त्री सिंधुमती ने उन्हे घोडे के लिए रखी हुई कडवी तु बी का आहार दे दिया, जिससे उनका शरीर छूट गया । राजा के साथ गगदत्त सेठ भी था, उसे यह सुनकर बडा खेद और वैराग्य हुआ । अत तत्काल ही उसने भोगो से उदास होकर जिनदीक्षा ले ली और राजा ने क्रोधित होकर सिंधुमती को उसकी नाक, कान, कटवाकर और गधे पर चढ़ाकर अपने शहर से निकलवा दिया । सिंधुमती को कुछ समय

के बाद कुष्ठ रोग हो गया, जिससे उसका शरीर गल गया। अन्त मे मर कर वह छठे नरक मे गई।"

(पूतिगध और दुर्ग धा की कथा, पुण्याश्रव कथाकोश, पृष्ठ २५५)

(४)

"उसी नगर मे एक और सुमित्र नाम का वणिक् रहता था। उसकी स्त्री वसुकान्ता से एक श्रीषेण पुत्र था। जो रात दिन सातो व्यसनो मे लीन रहता था। एक दिन उसे कोतवाल ने चोरी करते हुए पकड लिया। इस अपराध मे राजा ने उसे शूली की आज्ञा दे दी।"

(पूतिगध और दुर्ग धा की कथा—पुण्याश्रव कथाकोश पृष्ठ २५३)

(५)

नागश्री ने उसकी यह दशा देखकर सोमशर्मा से पूछा—"पिताजी बेचारा यह पुरुष इस प्रकार निर्दयता से क्यो मारा जा रहा है?" सोमशर्मा बोला—"बच्ची, इस पर एक वनिए के लडके बरसेन का कुछ रुपया लेना था। उसने इससे अपने रुपयो का तकादा किया। इस पापी ने उसे रुपया न देकर जान से मार डाला। इसलिए उस अपराध के बदले अपने राजा ने इसे प्राण दड की सजा दी है।"

(सुकुमाल मुनि की कथा—आराधना कथाकोश भाग २ पृष्ठ २१८)

(६)

राजा ने चण्डकीर्ति नाम के अपने कोतवाल को बुलाकर कहा—"थैली के चुराने वाले मनुष्य को ला वरना तेरा सिर कटवा दिया जायेगा।' कोटवाल पाच दिन के अदर चोर को पेश करने का वायदा कर चारो को साथ ले अपने घर गया और उदास हो पलग पर लेट गया।

(सूर्य मित्र और चाण्डाल पुत्री की कथा—पुण्याश्रव कथाकोश पृष्ठ १४२)

(७)

थोडी दूर जाने पर उन्होने एक स्त्री देखी, जिसकी नाक कटी हुई थी और पुरुष की चोटी से उसका गला बँधा हुआ था। नागश्री ने पूछा—"पिताजी, इसकी ऐसी दशा क्यो हुई?" नागशर्मा बोला—'इसी नगरी मे मात्स्य नाम के सेठ की जैनी नाम की स्त्री है। उसके गर्भ से नन्द और नाम के दो पुत्र हुए थे। नन्द जब व्यापार करने विदेश जाने लग मामा सूरसेन से कहा—मामा, मै द्वीपान्तरो मे । आऊँ अपनी पुत्री मदाली का ब्याह किसी से न . से

सूरसेन ने कहा—'मैं तुमको ही अपनी पुत्री दूँगा मगर तुम अवधि नियत करके जाओ।' मदाली कुँआरी रहकर ही अपनी जवानी के दिन काटने लगी उसके मकान के पास ही एक बारह करोड की सम्पत्ति का स्वामी नागचन्द्र नाम का वणिक् रहता था। उसके वारह स्त्रियाँ थी। मदाली और उसका परस्पर प्रेम हो गया, और दोनो आनद से काम सेवन करने लगे। कोतवाल को इनका हाल मालूम हो गया, एक दिन कोतवाल ने किसी तरह इनको एक साथ पकड लिया और दोनो को राजा के सामने पेश किया। राजा ने इनके लिए जो आज्ञा दी उसी के अनुसार ये दण्ड भोग रहे हैं।

(सूर्य मित्र और चाडाल पुत्री की कथा—पुण्याश्रव कथाकोश पृष्ठ १४६)

(८)

एक दिन राजा श्रेणिक के सामने एक झगडा उपस्थित हुआ, जिसका साराश यह है कि—उसी राजगृह नगर मे समुद्रदत्त सेठ के वसुदत्ता और वसुमित्रा नाम की दो स्त्रियाँ थी जिनमे से छोटी वसुमित्रा के एक पुत्र था। वह पुत्र दोनो को इतना प्यारा था कि दोनो ही उसका लालन-पालन करती और दूध पिलाया करती थी। कुछ दिनो के पीछे सेठ के मरने पर उन दोनो मे 'यह मेरा पुत्र है' इस प्रकार कह कर झगडा शुरु हुआ और वह यहाँ तक वढा कि वे दोनो राजा के पास पहुँची। परन्तु राजा अनेक प्रयत्न करने पर भी फैसला न कर सका। तव अभय कुमार के पास वह झगडा आया और उसने अनेक उपायो से उसका असली तत्व समझना चाहा, परन्तु जब कुछ लाभ नही हुआ अब अन्त मे अभयकुमार ने एक प्रयत्न किया। वह यह है कि उस बालक को धरती पर लिटाकर एक छुरी निकाली और उसे यह कहकर मारने को तत्पर हुआ कि अब इन दोनो माताओ को इसके दो टुकडे करके एक-एक सोप देता हूँ। इसके बिना यह झगडा नही मिट सकता। यह सुनते ही जो उस बालक की असली माता थी, उसने पुकार कर और रोकर कहा—'महाराज! मुझे यह पुत्र नही चाहिये। इसी को (दूसरी को) सौंप दीजिए। मैं उसके पास ही इसे देख-देख कर जीऊँगी, परन्तु कृपा करके वध न कीजिए।" इस सच्चे पुत्र स्नेह से अभयकुमार ने तुरन्त जान लिया कि यही इसकी यथार्थ माता है अतएव उसी समय वह पुत्र उसे सौंप दिया गया।

(राजा श्रेणिक की कथा, पुण्याश्रव कथाकोश पृष्ठ ४७)

सन्दर्भ-ग्रन्थ-तालिका

१ हरिवशपुराण
२ महावीर-पुराण
३ प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ
४. श्री मरुधर केशरी मुनि श्री मिश्रीलाल जी महाराज अभिनन्दन ग्रन्थ
५ पुण्यास्रव कथाकोप
६ श्री मद् विजय राजेन्द्र सूरि स्मारक ग्रन्थ
७ हिन्दी साहित्य कोष भाग १
८. सम्मेलन पत्रिका (लोक-सास्कृति अक)
९. जैनधर्म (प. कैलाशचन्द्र शास्त्री)
१०. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ
११ आजकल (लोक-कथा अक)
१२ हरियाणा प्रदेश का लोक-साहित्य—डॉ० शकरलाल यादव
१३ आराधना कथा कोष भाग १, २, ३, ४,
१४ वृहत्कथा कोश
१५. खडी बोली का लोक-साहित्य—डॉ सत्या गुप्ता
१६. लोक-साहित्य-विज्ञान—डॉ० सत्येन्द्र
१७ जैन रामायण
१८. भारतीय कथाएँ भाग १ २ —डॉ० जगदीश चन्द्र जैन
१९ जैनागम मे भारतीय समाज—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
२० दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
२१. रमणी के रूप—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन
२२. धम्मपद
२३. महाभारत
२४. नाया धम्म कहा
२५ शुक सप्तति
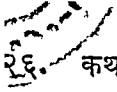
२६. कथासरित्सागर
२७ पचतत्र
२८ बैताल पचविंशतिका
२९ वृहत्कल्प सूत्र
३० श्री चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ
३१ हिन्दी कविता मे प्रकृति चित्रण—डॉ० खण्डेलवाल
३२ लोक-कथाओ के कुछ रूढ तन्तु—डॉ० सहल
३३ भक्तामर स्तोत्र की कथाएँ
३४ सुगध दशमी कथा (सपादक डॉ० हीरालाल जैन)
३५ समराच्च कहा
३६ उवासगदसाओ
३७ उपदेशमाला भाषातर
३८ जैन-शतक—कवि भूदरदास
३९ जैन-साहित्य और इतिहास—प नाथूराम प्रेमी
४० आदिनाथ पुराण मे प्रतिपादित भारत—डॉ० नेमिचन्द जैन
४१ जैन-साहित्य का वृहत इतिहास भाग ४—डॉ० मेहनलाल महता
४२ रासो मे कथानक रूढियाँ—डॉ० वृजविलास श्रीवास्तव
४३. हिस्ट्री आव इण्डियन लिट्रेचर भाग—३ विण्टरनीज
४४ बिहारी रत्नाकर
४५ विद्यापति
४६ श्री सम्पूर्णानन्द अभिनदन ग्रन्थ
४७ काव्य दर्पण—प रामदहिन मिश्र
४८, यशस्तिलक चम्पू—श्री सोमदेवसूरि
४९ अरेबियन नाइट्स
५० पद्मचरित्र—श्री विमल सूरि
५१ कथाकोप—श्री हरिषेण